तत्कालीन समस्याएं और सीटू का दृष्टिकोण

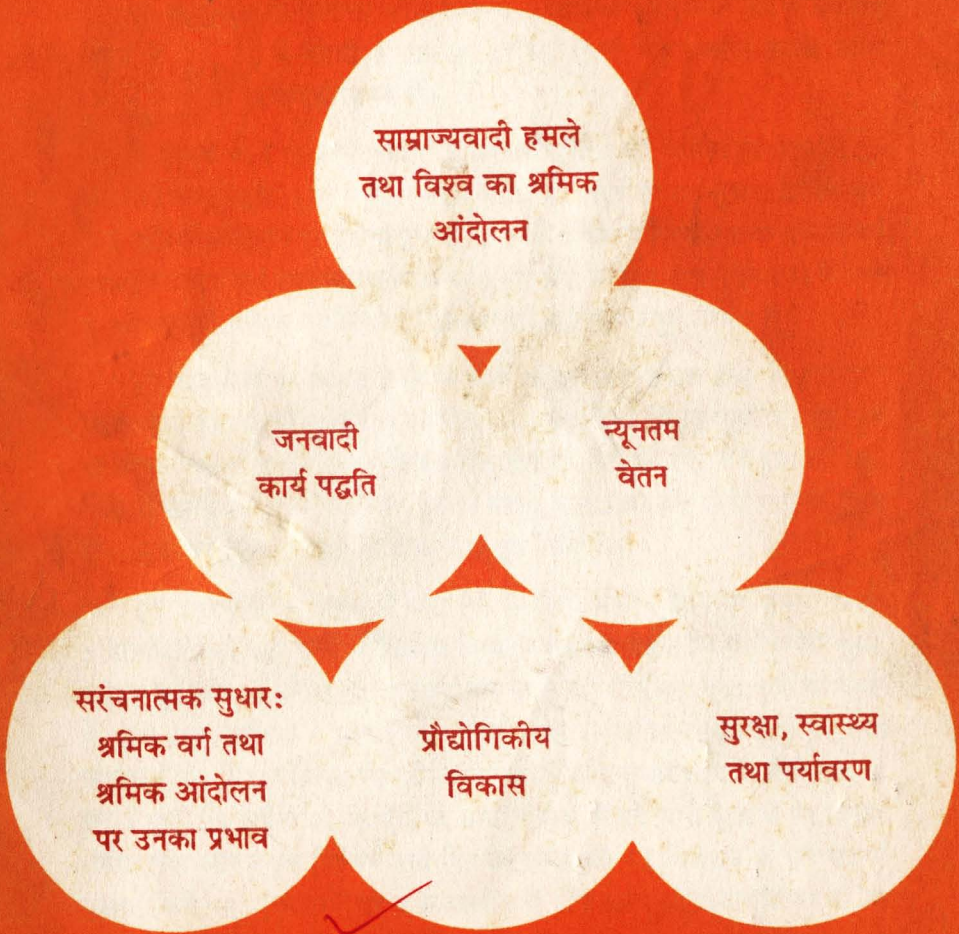

कोची में 20-26 अप्रैल, 1997 को सम्पन्न सी आइ टी यू के नवम महाधिवेशन द्वारा पारित नीति सम्बन्धी दस्तावेज

प्रस्तावना

सी आइ टी यू के जिन छह नीति सम्बन्धी दस्तावेजों का पुस्तक रूप में प्रकाशन किया जा रहा है, वे कोची में 20-26 अप्रैल, 1997 को सम्पन्न उसके नवम महाधिवेशन के विचारार्थ विषय थे।

ये विषय थे: (1) साम्राज्यवादी हमले तथा विश्व का श्रमिक आंदोलन, (2) जनवादी कार्य पद्धति, (3) न्यूनतम वेतन नीति (4) संरचनात्मक सुधार: श्रमिक वर्ग तथा श्रमिक आंदोलन पर उनका प्रभाव, (5) प्रौद्योगिकीय विकास तथा श्रमिक वर्ग में संरचनात्मक एवं रचना परिवर्तन और (6) सुरक्षा, स्वस्थ्य तथा पर्यावरण। ये सभी विषय सम्पूर्ण श्रमिक आंदोलन के विचारणीय एवं महत्वपूर्ण विषय हैं।

इन दस्तावेजों पर विचार करने के लिये अलग-अलग छह सत्रों का आयोजन किया गया था। इनकी अध्यक्षता कामरेड एन प्रसाद राव, विमल रणदिवे, एस सूर्य नारायण राव, के एल बजाज चित्तब्रत मजूमदार तथा टी के रंगराजन द्वारा की गई। नीति सम्बन्धी दस्तावेज कामरेड ई. बाला नन्दन, कनाई बनर्जी, पी के गांगुली, तपन सेन, सुकोमल सेन तथा पी के दास ने प्रस्तुत किये थे।

इन दस्तावेजों पर बहस में भाग लेने के लिये महाधिवेशन के समस्त 2400 प्रतिनिधियों को छह भागों में विभक्त किया गया। यह बहस 24 अप्रैल की सुबह प्रारम्भ हुई और 25 अप्रैल को आपरान्ह तक जारी रही। विभिन्न दस्तावेजों पर बहस में कुल 200 साथियों ने भाग लिया। उनकी ओर से अनेक सुझाव दिये गए तथा संशोधनों का प्रस्ताव किया गया और दस्तावेजों में और सुधार लाने के लिये नोट भी लिखे गए। 25 अप्रैल को आयोगों के समापन सत्रों में इन सभी सुझावों पर विचार किया गया और उनके निष्कर्ष उसी दिन आपरान्ह को महाधिवेशन के पूर्ण सत्र में प्रस्तुत किये गए। पूर्ण सत्र ने बहस के आलोक में नीति सम्बन्धी दस्तावेजों को अंतिम रूप देने के लिये सेक्रेटेरियट को अधिकृत किया था। उसके अनुरूप सी आइ टी यू सेक्रेटेरियट ने इन दस्तावेजों को अंतिम रूप दिया है।

भारतीय ट्रेड यूनियन केन्द्र
का सेक्रेटेरियट

विषय सूची

क्रमांक	दस्तावेज	पृष्ठ संख्या
1.	साम्राज्यवादी हमले तथा विश्व का श्रमिक आंदोलन	1
2.	जनवादी कार्य पद्धति	18
3.	न्यूनतम वेतन नीति	29
4.	संरचनात्मक सुधार:श्रमिक वर्ग तथा श्रमिक आंदोलन पर उनका प्रभाव	40
5.	तकनीकी विकास तथा श्रमिक वर्ग में संरचनात्मक एवं रचना परिवर्तन	56
6.	सुरक्षा, स्वस्थ्य तथा पर्यावरण	63

साम्राज्यवादी हमले तथा विश्व का श्रमिक आंदोलन

1. साम्राज्यवाद के सम्बन्ध में अवधारणा

इतिहास जैसा कि हमें परम्परागत ढंग से पढ़ाया व समझाया गया है, राष्ट्रों के मध्य युद्धों, शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा दुर्बल राष्ट्रों को पराधीन करने, उनकी धन-सम्पदा की लूट मचाने की घटनाओं का इतिहास है। ये घटनाएं केवल युद्ध का लक्ष्य ही नहीं अपितु युद्ध की परिणति भी होती थीं। प्रत्येक क्षेत्र के महाकाव्य इन्हीं छोटे-बड़े युद्धों का वर्णन करते हैं; इन युद्धों में केवल महिलाएं एवं पुरुष ही भाग नहीं लेते थे अपितु ईश्वरीय अवतार एवं देवता भी भाग लेते थे। ये लोग भिन्न-भिन्न भाषाएं बोलते थे। हमारे युग के इतिहासकारों ने ऐसे सहस्रों युद्धों की कहानियां कही हैं और तो और दो विश्व युद्धों ने तो हमारे सम्पूर्ण भूमण्डल को ही अपनी युद्धाग्नि की लपटों के घेरे में ले लिया था। इनके दुष्परिणामस्वरूप मानवता को विनाश लीला, कष्टों एवं पीड़ाओं के वीभत्स को झेलना पड़ा था।

दो विश्व युद्ध स्थानीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर हुए छोटे-बड़े सैंकड़ों युद्धों की स्वाभाविक परिणति थे। ये युद्ध साम्राज्यवादी देशों ने अपनी पूंजीवादी अथवा तथाकथित बाजार अर्थ व्यवस्थाओं के हितों एवं स्वार्थों के वशीभूत होकर लड़े गए थे। महाद्वीपों को हड़पने की साम्राज्यवादी लालसा; क्षेत्रों अथवा सीमाओं को जीत लेने; दूसरे वंशों की दासत्व स्वीकार कर लेने पर बाध्य करने के लिये अनेकानेक सैन्य हस्तक्षेप इत्यादि इन सब का औद्योगिक क्रांति के साथ अंतरंग सम्बन्ध रहा है। क्रांति की यह लहर पहले पूरे युरोप में और उसके पश्चात् पूंजीपतियों की दादागिरी के अन्तर्गत सम्पूर्ण भूमण्डल में चलने लगी थी।

इजारेदार पूंजीपतियों जो साम्राज्यवादी राष्ट्रों के प्रभारी थे, के लिये ये सब बातें कोई अर्थ नहीं रखतीं। वे लोग इसे अपनी पूर्णतया ठीक एवं कानूनी गतिविधि का तार्किक प्रसार अथवा विशुद्ध आर्थिक गतिविधि मानते हैं। उनके वेतन चिट्ठों पर अनेक बुद्धिजीवियों के नाम दर्ज हैं जो उन गतिविधियों को सैद्धान्तिक स्वरूप प्रदान करने, उन युद्धों की

अवश्यंभाविता दर्शाने के लिये घोर परिश्रम करते रहे हैं। उनके पास मालथुस जैसे अर्थशास्त्री भी थे जिन्हें लगता था कि युद्ध मानवता पर लाभकारी प्रभाव डालते हैं। श्रमिक वर्ग जो एक वैकल्पिक विश्व दृष्टिकोण के संश्लेषण (सिंथीसिस) के लिये संघर्षरत था, ने स्वाभाविक रूप से पूंजीपतियों की दादागिरी तथा साम्राज्यवादी हमलों का प्रतिकार किया। पेरिस कम्यून, कम्युनिस्ट घोषणा पत्र, श्रमिक आंदोलन की असंख्य कार्रवाईयां युरोप भर में हुईं और तत्पश्चात् प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर सोवियत क्रांति हुई। सोवियत क्रांति पूंजीपतियों की दादागिरी तथा साम्राज्यवादी हमलों के विरुद्ध श्रमिक वर्ग का स्वाभाविक प्रत्युत्तर थी।

प्रथम विश्व युद्ध भूमण्डलीय बाजार में साम्राज्यवादियों की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता को समाप्त नहीं कर पाया; द्वितीय विश्व युद्ध बाजार समस्या के लिये मालथ्यूजियन समाधान के रूप में सामने आया, पूंजीपतियों तथा उनके सिद्धान्तकारों की द्वितीय विश्व युद्ध पर अपनी ही व्याख्याएं हैं और शीत युद्ध के दशकों में भी उन्होंने स्वतंत्रता, लोकतंत्र तथा मानवाधिकारों के नाम पर विश्व की जनता के मन-मस्तिष्क पर अपनी इन्हीं व्याख्याओं की छाप छोड़ने का प्रयास किया था। दशकों पुराने शीत युद्ध ने सफलतापूर्वक सोवियत संघ का विध्वंस किया और वह विश्व समाजवादी शिविर को पूर्णतया दुर्बल बना देने में भी सफल रहा जबकि समाजवादी शिविर ने सात दशकों से भी अधिक समय तक विश्वव्यापी स्तर पर साम्राज्यवाद विरोधी गठबंधन के आधार के रूप में काम किया था।

2. संयुक्त राष्ट्र तथा नयी विश्व व्यवस्था

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् लीग आफ नेशन्स अस्तित्व में आया था। उसकी स्थापना का उद्देश्य साम्राज्यवादी देशों के आर्थिक अथवा बाजार हितों के टकरावों को शांतिपूर्वक ढंग से समाप्त करना तथा उसे एक उपकरण के रूप में प्रयोग में लाना था। किन्तु वह इसमें सफल नहीं हो सका, वह और भी भयानक विनाशकारी द्वितीय विश्व युद्ध को फूटने से रोक नहीं सका। संयुक्त राष्ट्र जिसे द्वितीय विश्व युद्ध के विजेताओं अर्थात् गठबंधन के देशों तथा सोवियत संघ द्वारा अस्तित्व में लाया गया था, भूमण्डलीय स्तर पर विश्व के विभिन्न लोगों के मध्य विचारों के आदान-प्रदान का एक मंच था। ऐसी अनेक उदाहरणें दी जा सकती हैं जहां अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी शक्तियों ने इस नयी विश्व संस्था का उपयोग विश्व में पुनः अपनी दादागिरी चलाने के उद्देश्य से किया था। सोवियत संघ, समाजवादी शिविर तथा तृतीय विश्व के देशों ने गुट निर्पेक्ष आंदोलन के माध्यम से सफलतापूर्वक साम्राज्यवाद के इन हमलों का प्रतिकार किया था।

यह एक नया इतिहास है कि वे देश जो भूमण्डलीय करण तथा अपने नेता अमरीका सहित विश्व के सभी राष्ट्रों की एक दूसरे पर निर्भरता की बातें बढ़-चढ़कर कर रहे हैं, उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी पावन संस्था को सुदृढ़ बनाने के लिये क्रियात्मक रूप से बहुत कम

कार्य किया है। दूसरी ओर उन्होंने प्रत्येक वह कार्य किया है जिससे संयुक्त राष्ट्र की लोकतांत्रिक व्यवस्था व्यावधान उत्पन्न होता हो जबकि यह संस्था मानवता के विकास तथा प्रगति से सम्बन्धित समस्याओं को प्रभावशाली ढंग से सुलझा सकती थी। प्रारम्भ में ही अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक को उसकी लोकतांत्रिक परिधि से बाहर रखा गया जबकि ये दोनों संगठन स्वयं उसकी ही उत्पत्ति थे। वर्तमान में भी ये संगठन निरंतर अमरीका तथा अन्य साम्राज्यवादी देशों के बंधुआ बने हुए हैं और संयुक्त राष्ट्र का उन पर कोई नियंत्रण नहीं है।

संयुक्त राष्ट्र तथा यू एन आइ डी ओ, यूनिसेफ जैसे उसके विभिन्न अभिकरणों को धन देने से इन्कार करना तथा धन आपूर्ति को रोकना और वह भी नाटकीय आधार पर एवं बाजू लहरा कर संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र की मूल भावना का उल्लंघन है। अमरीका अतीत में उल्लंघन की ऐसी कार्रवाईयां करता रहा है। अमरीका ने यूनिडो जैसे संयुक्त राष्ट्र निकायों से स्वयं को असम्बद्ध कर रखा है और उसकी सदस्यता समाप्त हो गई है। वह विश्व व्यापार के प्रश्न पर इस बात पर विशेष रूप से बल देता रहा है कि इन (व्यापार) तथा इनसे सम्बन्धित मुद्धों के साथ निपटने के लिये संयुक्त राष्ट्र के आधिकारिक निकाय अंकटाड को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समझौतों तथा बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से सम्बन्धित समझौंतों के मामलों में केन्द्र बिंदु न बनाया जाए। गैट और उसके साथ-साथ उसके उत्तराधिकारी विश्व व्यापार संगठन को पूर्ण रूप से संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था के बाहर काम करने पर विवश किया गया।

अमरीका के सक्रिय सहयोग तथा सहभागिता के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र के स्तर में उल्लेखनीय सीमा तक गिरावट आ गई है और स्वतंत्र राष्ट्रों की लोकतांत्रिक सभा के रूप में सुनियोजित ढंग से उसके दर्जे को समाप्त किया गया है। अनेक भूमण्डलीय सम्मेलन जिनका आयोजन प्रकट रूप में संयुक्त राष्ट्र द्वारा किया जाता है वस्तुत: गैर सरकारी संगठनों तथा सभी प्रकार की स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा प्रायोजित जमावड़े के रूप में परिवर्तित होकर रह गए हैं। पर्यावरण पर रियो सम्मेलन, जन संख्या पर काहिरा सम्मेलन, महिलाओं के बीजिंग सम्मेलन और सामाजिक विकास पर कोपेनहेगन सम्मेलन में भूमण्डलीय महत्व के विषयों पर विचार किया गया था। किन्तु उन पर कोई कार्रवाई नहीं की गई और वे घोषणाएं मात्र बन कर रह गए हैं और साम्राज्यवादी देशों द्वारा सभी प्रकार के नागरिक तथा सैनिक षड्यंत्रों के लिये एक मंच के रूप में संयुक्त राष्ट्र का उपयोग किया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र को वर्तमान में एक ऐसे ईश्वर के रूप में जाना जाने लगा है जो असफल रहा है और जिसकी व्यावहारिक रूप से कोई पूछ नहीं है और सारी पहलकदमियां तथाकथित विश्व व्यवस्था की ओर सरक रही हैं।

सबसे खराब बात तो यह है कि संयुक्त राष्ट्र की असंख्य घोषणाओं को विश्वव्यापी स्तर पर जोर शोर से अभियान चलाए जाने के पश्चात् तज दिया गया है, उन्हें गलत दिशा दे दी गई है और यहां तक कि वैचारिक दृष्टि से उन्हें साम्राज्यवादियों की पक्षपाती बना दिया

गया है और साम्राज्यवादी भूमण्डलीय सरदारी स्थापित करने की अपनी हार्दिक इच्छाओं का कपटपूर्ण ढंग से छिपा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र के पूर्व प्रमुख महासचिव बी बी घाली ने कोपेनहेगन घोषणापत्र की प्रस्तावना में अतिरंजित टिप्पणियां की थीं और प्रकट में भारी संतोष व्यक्त किया था। उन्होंने कहा था: "पूर्व-पश्चिम विभाजन विलुप्त प्राय: हो गया है और उत्तर-दक्षिण टकराव अधिकारिक भूमण्डलीय दृष्टिकोण अपनाते जा रहे हैं।" विश्व की वर्तमान स्थिति पर सरसरी दृष्टि डालने से भी हमें पता चल जाएगा कि संयुक्त राष्ट्र के पूर्व प्रमुख महासचिव के वक्तव्य का वास्तविकताओं से कुछ लेना-देना नहीं है।

3. भूमण्डलीय उत्पादन तंत्र

संयुक्त राष्ट्र जैसे लोकतांत्रिक विश्व मंच सोवियत संघ का विखण्डन होने के पश्चात् तीव्र गति से अपकर्ष की ओर अग्रसर हो रहे हैं। और उसके साथ-साथ भूमण्डलीय उत्पादन तंत्र तथा भूमण्डलीय वित्तीय व्यवस्था भी तेजी के साथ विश्व इजारेदारों की दादागिरी भरे नियंत्रण में आती चली जा रही है। इलेक्ट्रानिक्स, कम्प्यूटर, दूरसंचार तथा उपग्रह प्रौद्योगिकी अथवा सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में की गई जबरदस्त प्रगति का व्यापक स्तर पर दुरुपयोग किया जा रहा है। यह दुरुपयोग न केवल भूमण्डलीय स्तर पर उत्पादन सुविधाओं को पुनर्गठित तथा पुर्नस्थापित करने के लिये किया जा रहा है अपितु उत्पादन व्यवस्थाओं की पुर्नसंरचना हेतु भी हो रहा है। विदेशी बहुराष्ट्रीय इजारेदार न केवल वेतनों, ब्याज तथा करों सम्बन्धी लागत को कम से कम करने अपितु प्रतिस्पर्धा को समाप्त करने के उद्देश्य से भी अपनी भूमण्डलीय समर नीतियों को नया स्वरूप दे रहे हैं। वे अपनी दादागिरी एवं नियंत्रण में भूमण्डलीय उत्पादन तंत्र को विकसित भी कर रहे हैं।

और इनमें से अधिकांश विदेशी बहुराष्ट्रीय इजारेदारों का साम्राज्यवादी देशों में अपना आधार है और अवश्यंभावी रूप से वे अपनी राष्ट्रीय नीतियों तथा राजनीति को उनके अनुरूप ढाल रहे हैं और इसके बदले में साम्राज्यवादी देश उनके अनुकूल भूमण्डलीय नीतियों का निर्धारण करते हैं। अधोलिखित अंश "पीपुल्स वीकली वर्ल्ड" में प्रकाशित एक लेख में से लिया गया है; उसमें रहस्योद्घाटन किया गया है:

पृथ्वी पर द्ररिद्रतम 4.5 अरब लोग उसके निवासियों का 80 प्रतिशत भाग परस्पर मिल कर विश्व के सबसे बड़े 200 निगमों की बिक्री की आधे से थोड़ी अधिक राशि का अर्जन करते हैं। अत: नीति अध्ययन संस्थान (आइ पी एस) वाशिंगटन डी सी ने हाल ही में प्रकाशित अपनी रिपोर्ट में कहा है, "शीर्ष 200: भूमण्डलीय कार्पोरेट शक्ति का उदय।"

"दो सौ विशालकाय निगमों में से अधिकांश अनेक राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं से भी बड़े हैं। के अब विश्व की एक चौथाई से भी अधिक आर्थिक गतिविधियों को नियंत्रित कर रहे हैं।" ये विचार सारा एंडरसन तथा जान कैवाना द्वारा लिखित रिपोर्ट में व्यक्त किये गए हैं।

''फिलिप मोरिस न्यूजीलैंड से भी बड़ी है और 170 देशों में उसका काम चल रहा है...सर्वाधिक चौंका देने वाला तथ्य यह है कि ज्यों ज्यों कार्पोरेट का केन्द्रीयकरण अपने उभार की ओर अग्रसर हो रहा है त्यों त्यों कार्पोरेट लाभ बढ़ते चले जा रहे हैं। इस पर भी श्रमिकों तथा विभिन्न समुदायों को बढ़ती आय का बहुत छोटा भाग मिल रहा है और वह भाग भी दिन प्रतिदिन सिकुड़ता चला जा रहा है।''

इन निगमों की आय विश्व के कुल सकल घरेलू उत्पाद (जी डी पी) के अनुपात तथा समग्रता अर्थात् दोनों ही रूपों में बढ़ रही है। वर्ष 1982 में विश्व का सकल घरेलू उत्पाद 12.6 खरब अमरीकी डालर था। उसमें से 200 निगमों की बिक्री एक चौथाई भाग से थोड़ी ही कम थी। वर्ष 1995 तक विश्व के सकल घरेलू उत्पाद में दोगुणा वृद्धि हुई अर्थात् वह 25.224 खरब अमरीकी डालर था; शीर्ष 200 निगमों की बिक्री विश्व के सकल घरेलू उत्पादन के 28 प्रतिशत भाग से भी अधिक रही।

वर्ष 1982 में जापान तथा अमरीका की कम्पनियों की संख्या 115 थीं और 1995 में वे बढ़ कर 117 हो गईं। वर्ष 1982 में उनमें से केवल 15 कम्पनियों का मुख्यालय जापान में था। वर्तमान में, तथापि, वहां 58 कम्पनियों के मुख्यालय हैं और शीर्ष 200 की कुल बिक्री में उनका भाग 39 प्रतिशत है जबकि 59 अमरीकी फर्में कुल बिक्री का केवल 28 प्रतिशत भाग अर्जित करती हैं।

बिक्री के मामले में किन्तु कार्पोरेट लाभ के मामले में नहीं, शीर्ष 10 कम्पनियों में से 6 जापान में अवस्थित थीं जबकि तीन अमरीका में और एक दक्षिण कोरिया में स्थापित है। शीर्ष 200 कम्पनियों में से 93 प्रतिशत कम्पनियां केवल सात देशों - अमरीका, जापान, जर्मनी, फ्रांस, युनाइटिड किंगडम, नीदरलैंड तथा स्विटजरलैंड में स्थित हैं।

केवल दो विकासशील देशों दक्षिण कोरिया तथा ब्राजील में स्थित कुछेक कम्पनियों का नाम शीर्ष 200 कम्पनियों की सूची में दर्ज है। उनकी 6 फर्मों की बिक्री शीर्ष 200 फर्मों की कुल बिक्री के 2 प्रतिशत भाग से भी कम है।

वर्ष 1995 में 191 देशों में से केवल 21 देशों की अर्थ व्यवस्थाएं इन सबसे बड़े निगमों से आगे निकली हैं, जापान की मितसुबिशी की बिक्री 184.5 अरब अमरीकी डालर की थी। यह बिक्री विश्व के चौथे सर्वाधिक जनसंख्या वाले देश इंडोनेशिया की अर्थव्यवस्था से भी अधिक थी। अमरीकी महाद्वीप में केवल अमरीका, ब्राजील, कैनेडा, मैक्सीको तथा अर्जनटाइना का सकल घरेलू उत्पाद मितसुबिशी की बिक्री से होने वाली आय से अधिक था। वास्तव में 20 सबसे बड़े भूमण्डलीय निगमों में से प्रत्येक निगम की आय लातिनी अमरीका में ब्राजील, मैक्सीको तथा अजर्नटाइना के अतिरिक्त शेष सभी देशों के सकल घरेलू उत्पाद से अधिक थी।

200 निगम आधे भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं जबकि 40,000 फर्मों में से केवल

एक प्रतिशत फर्मों ने अपने मुख्यालय वाले राष्ट्रों की सीमाओं से बाहर अपना प्रसार किया है। ये 40,000 फर्में अपना कारोबार लगभग 250,000 सम्बद्ध फर्मों के माध्यम से चलाती हैं। जब निगम अन्य देशों में अपनी शाखाएं खोलते हैं तो वे अपने उत्पादों के कुछ भाग का उत्पादन वहां करते हैं और फिर उन्हें मूल फर्मों अथवा दूसरे देशों में स्थित अपने साथ सम्बद्ध फर्मों को बेच देते हैं। क्या इसे ही व्यापार कहा जाएगा? विश्व का एक तिहाई व्यापार मात्र ''क्रय-विक्रय'' ही होता है। 40 प्रतिशत जापानी निर्यात अपनी मूल फर्मों की अन्य शाखाओं को होता है।

यदि अग्रणी निगम विश्व की आर्थिक गतिविधियों के एक चौथाई भाग का संचालन करते हैं तो क्या उन्हें विश्व की कुल श्रम शक्ति के एक चौथाई भाग को रोजगार नहीं देना चाहिये? आइ पी एस द्वारा उल्लिखित संयुक्त राष्ट्र के आंकड़ों के अनुसार इन लोगों की कुल संख्या लगभग 65 करोड़ होगी; किन्तु उन्होंने केवल 1.88 करोड़ लोगों को रोजगार दिया है जो इन श्रमिकों की कुल संख्या के एक प्रतिशत भाग से भी कम है। शीर्ष 200 निगमों में से केवल 13 व्यापारिक फर्मों में केवल 118,000 लोगों को रोजगार दिया गया था।

यह ''उद्योग'' तथा अधिक बिक्री - वर्ष 1995 में 1,216 अरब अमरीकी डालर - यह बिक्री किसी भी अन्य उद्योग से अधिक है। दूसरा सबसे बड़े लाभ वाले उद्योग आटोमोबाइल्स, में 2.8 76 मिलियन लोग रोजगार पर लगे हैं। 15 में से 3 आटो कम्पनियां अमरीकी निगम थीं। उनकी आय 1.168 मिलियन के मध्य थी और वहां 709,000 लोग रोजगार पर लगे थे। यह निगम समूह में सबसे बड़ा नियोजक है।

गैर उत्पादक उद्योग अर्थात् 63 व्यापारिक, बैंकिंग, बीमा तथा वित्तीय फर्मों की बिक्री वर्ष 1995 में 2.490 खरब अमरीकी डालर थी अर्थात् 200 शीर्ष निगमों की कुल बिक्री का 35 प्रतिशत भाग और विश्व के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 10 प्रतिशत भाग। पांच व्यापारिक निगमों ने शीर्ष 200 निगमों की सम्पूर्ण बिक्री का 12 प्रतिशत भाग - विश्व के सकल घरेलू उत्पाद का 3 प्रतिशत अर्जित किया। अब केवल दूरसंचार उद्योग वार्षिक बिक्री में 289 अरब अमरीकी डालर - विश्व अर्थव्यवस्था का 1 प्रतिशत भाग अर्जित करता है।

किन्तु विश्व की जनता के लिये कुल कितनी पूंजी उपलब्ध है? विश्व की जनसंख्या का दरिद्रतम 85 प्रतिशत भाग उन देशों में रहता है जिनका सकल घरेलू उत्पादन 1,000 अमरीकी डालर प्रति व्यक्ति से भी कम है। तुलना करने पर पता चलेगा कि अमरीका में प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद लगभग 25,000 अमरीकी डालर है।

बहुत अधिक शोर मचाया जा रहा है कि यह युग ''सूचना के सुपर हाई-वे'' का युग है। जब हम एट एण्ड टी तथा जी टी ई के विश्व व्यापी कम्प्यूटर वेब -साईट्स का भ्रमण करते हैं तो हमें याद रखना होगा कि विश्व के 90 प्रतिशत से अधिक लोगों के पास टेलीफोन नहीं हैं। आइ पी एस रिपोर्ट के शब्दों में ''शीर्ष 200 निगम भूमण्डलीय गांव का निर्माण नहीं

कर रहे अपितु भूमण्डलीय रंगभेद उत्पन्न कर रहे हैं।''

सामाजिक एवं राजनीति तनाव, इसी प्रकार का भूमण्डलीय उत्पादन तंत्र अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में लाया जाएगा और यह अत्यंत विशाल होगा। मोंस्ट्रस मशीन के निर्माताओं ने सिद्धान्त दिया है कि यदि विश्व व्यापार संगठन तथा अन्य तंत्रों को अपना काम करने दिया गया तो इसके फलस्वरूप भूमण्डलीय स्तर पर खुला एवं मुक्त व्यापार होगा; इससे लागत कम होगी ओर चहुंमुखी आर्थिक विकास तथा प्रगति होगी। और निःसंदेह यह उनकी तात्कालिक चिन्ता का विषय कदापि नहीं है। भूमण्डलीय उत्पादन तंत्र पहले ही सुपर लाभ हस्तगत कर रहा है और उसकी तात्कालिक चिन्ता निवेश के बहिर्वाह को ढूंढ़ना है ताकि वे सुपर लाभ अर्जित कर सकें।

4. भूमण्डलीय व्यापार तथा तृतीय विश्व की आंतरिक संरचना का अधिग्रहण

यह तथ्य कि भूमण्डलीय उत्पादन तंत्र पहले ही विशाल एवं अतिशय उत्पादन की ओर बढ़ रहा है। अब एक सर्वविदित तथ्य बन चुका है। हाल ही में प्रकाशित डब्ल्यू ग्राइडर द्वारा लिखित पुस्तक ''वन वर्ल्ड, रेडी आर नाट: द मानिक लाजिक आफ ग्लोबल केपिटलिज्म'' की समीक्षा हारवर्ड बिजनस रिव्यू (जनवरी-फरवरी 1997) में प्रकाशित हुई है। समीक्षा में टिप्पणी की गई है:

ग्राइडर का संदेश बहुत कष्टप्रद है। वह मान चुके हैं कि यद्यपि शीत युद्ध का अंत होने के पश्चात् मुक्त बाजार अर्थ व्यवस्था के दर्शन का प्रसार तीव्र गति से हुआ है तथापि शंघाई से लेकर वारसा तक समृद्धि के अनेक लघु क्षेत्र उभरे हैं, विश्व अर्थ व्यवस्था नियंत्रण में नहीं रही और वह 'ंदी की दिशा में अग्रसर है। उन्होंने तीन सर्वव्यापी रुझानों की पहचान की है, ये रुझान बढ़ रहे हैं। पहला रुझान बढ़ रहे उत्पादन का है; विश्व शीघ्र ही अतिरिक्त सामग्री से भर जाएगा। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां बाजार में अपना भाग प्राप्त करने के लिये नृशंस प्रतिस्पर्धा में लगी हुई हैं; वे भूमण्डल के सभी अर्थात् दूरवर्ती कोनों में फैल चुकी हैं। उनका लाभार्जन इंडोनेशिया जैसे स्थानों में वेतन को कम रखने पर निर्भर करता है जो इस बात की गारंटी है कि उन स्थानों के श्रमिक वह सामग्री खरीद नहीं सकते जिनका उत्पादन इन निगमों की ओर से किया जाता है। पश्चिम के उपभोक्ता उनके द्वारा उत्पादित सामग्री के पहाड़ को खपा सकें, ऐसी सम्भावना भी दिखाई नहीं दे रही। उदाहरणार्थ आटोमोबाइल उद्योग में भूमण्डलीय अतिशय क्षमता चार वर्ष के भीतर सम्पूर्ण उत्तरी अमरीकी उद्योग की उत्पादन क्षमता के समान हो जाएगी। रसायनों, औषधियों, इलेक्ट्रानिक्स तथा कपड़ा उद्योग में भी अतिरिक्त उत्पादन हो रहा है।

दूसरा रुझान सीमाओं के आर-पार धन का तीव्र तथा निरंतर प्रवाह होना हैं। ग्राइडर ने दर्शाया है कि किस प्रकार वित्तीय परिसम्पत्तियों के बड़े भण्डार बने और वाशिंगटन तथा अन्य सरकारों की अपेक्षा वाल स्ट्रीट अधिक शक्तिशाली कैसे हैं। उदाहरणार्थ वर्ष 1983 में अमरीका, फ्रांस, जर्मनी, जापान तथा ग्रेट ब्रिटेन के केन्द्रीय बैंकों के आरक्षित कोष में 139 अरब अमरीकी डालर थे और विदेशी मुद्रा का दैनिक व्यापार 39 अरब अमरीकी डालर का था। दस वर्ष पश्चात् उन बैंकों का आरक्षित कोष 278 अरब अमरीकी डालर तथा विदेशी मुद्रा का दैनिक व्यापार उछल कर 623 अरब अमरीकी डालर तक जा पहुंचा – और व्यापार की दर आरक्षित कोष की दर की अपेक्षा आज भी ऊंची बनी हुई है।

ग्राइडर का कहना है कि शक्तिशाली निजी बाजारों की गूंज विश्व अर्थ व्यवस्था में सुनाई दे रही है। वे विकसित देशों को प्रेरित कर रहे हैं कि वे इच्छित मात्रा से कहीं कम गति से विकास करें। यह मांग करके सरकारें अपने बजट को भी नियंत्रित कर रही हैं और उन्होंने मौद्रिक नीति को भी कस दिया है। इसका परिणाम आर्थिक संकुचन तथा अपस्फीति के लम्बे चक्र के रूप में निकलेगा। इसके अतिरिक्त ग्राइडर को भय है कि निवेश के ठोस अवसरों को हस्तगत करने के लिये निवेशित कोषों में आपूर्व वृद्धि हो जाएगी।"

इस प्रकार का सिद्धान्तीकरण और बुर्जुआ अर्थशास्त्रियों का विलाप अब एक सामान्य अनुभव बन चुंका है। और वे यह सुझाव देते चले जा रहे हैं कि भूमण्डलीय अर्थ व्यवस्था में तेजी से बढ़ रहे असंतुलनों के अनेक प्रकार के समाधान हैं। विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के महान सिद्धान्तकार साम्राज्यवादी विदेशी बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा उत्पादित सामग्री के विशाल अतिरिक्त भण्डार के लिये निवेश के अवसर सुलभ कराने के लिये ओवर टाइम कार्य कर रहे हैं। उनके नये आधुनिकीकृत तथा सभ्य उद्देश्यों को पूरा करने के लिये यह सामग्री तृतीय विश्व के देशों में उनकी अर्थव्यवस्था का निर्माण करने तथा आंतरिक संरचना को आधुनिक बनाने के नाम पर, वापस भेज दी जाएगी। ये प्रयोगात्मक आर्थिक माडल निजी अथवा विदेशी धन तथा प्रबंधन के लिये न केवल ऊर्जा, दूरसंचार, राष्ट्रीय मार्गों, रेलवे तथा जल आपूर्ति के मामले में लागू किये जा रहे हैं अपितु सरकारों के अत्यंत महत्वपूर्ण कार्यों को भी इन्हीं विशेषज्ञों द्वारा सम्पन्न कराया जा रहा है; इन्हें विस्तार में तृतीय विश्व के राष्ट्रों में लागू किया जा रहा है। इनमें से कुछ विदेशी बहुराष्ट्रीय निगमों में वित्तीय क्षमता भी है और वे विशाल भूभाग अथवा उपमहाद्वीप तक खरीद सकते हैं। इसमें वनस्पति तथा वन्य प्राणी जीवन भी सम्मिलित है और इनका प्रबंधन निजी उद्यमों के रूप में किया जा सकता है। ये पुराने औपनिवेशिक युग के अवशेष हैं जब ईस्ट इंडिया कम्पनियों ने एशिया, अफ्रीकी, तथा अमरीकी महाद्वीपों के विशाल क्षेत्रों (अथवा सीमाओं) में अपना राजनीतिक नियंत्रण स्थापित कर लिया था।

5. भूमण्डलीय व्यवस्था का कम्प्यूटरीकृत पुलिस शासन

साम्राज्यवादियों के आर्थिक हमलों का वर्तमान में उसकी अत्यंत विशाल तथा भूमण्डलीय आयामों वाली अजेय सैन्य शक्ति की ओर से पूर्ण समर्थन किया जा रहा है। संयुक्त राज्य अमरीका ओ ई सी डी देशों के साम्राज्यवादी ब्लाक के तटस्थ नेता के रूप में राष्ट्रों के समूह को पुलिस के डण्डे से हांकने के लिये सैन्य दृष्टि से पूर्णतया सुसज्जित है। सोवियत संघ तथा समाजवादी शिविर का पराभव होने के दुष्परिणामस्वरूप अमरीका की सैन्य शक्ति बढ़ गई है और उसके संगठन नाटों ने सम्पूर्ण विश्व पर अपना लगभग पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर लिया है। अमरीका के युद्ध पिपासुओं द्वारा शीत युद्ध के अंतिम चरण में शुरू किये गए तारा युद्ध कार्यक्रम (स्टार वार प्रोग्राम) तथा सामरिक प्रतिरक्षा पहलकदमी (एस डी आइ) को शुरू किया था। उसके चलते अमरीकी सेना के सुपर कम्प्यूटरों के भूमण्डलीय नेटवर्क की स्थापना हुई थी। उन्हें नवीनतम उपगृह संचार तथा नेटवर्क प्रौद्योगिकी के साथ जोड़ा गया है ताकि नोटिस मिलने के तत्काल पश्चात् भूमण्डल के किसी भी भाग में सैनिक हमला किया जा सके और उसकी योजना बनाई जा सके।

अमरीका के सैन्य विशेषज्ञों द्वारा परमाणु ऊर्जा की विपुल सम्भावनाओं का उपयोग प्राथमिकता के आधार पर नाभिकीय बम बनाने के लिये किया गया और द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के समय ही एशियाई लोगों के ऊपर कुछेक बमों की वर्षा करके उनका परीक्षण किया गया था। इस जघन्य कार्रवाई का उद्देश्य विश्व में अपना प्रभुत्व स्थापित करना तथा नाभिकीय शस्त्रों की क्षमता को प्रमाणित करना था। सुपर कम्प्यूटर तथा सूचना प्रौद्योगिकी के मामले में भी साम्राज्यवादियों का दृष्टिकोण भिन्न नहीं है। कम्प्यूटर नेटवर्क तथा सूचना प्रौद्योगिकी की जबरदस्त सम्भावनाओं के कारण जहां मानवता की बौद्धिक उत्पादकता में नाटकीय हुआ है वहीं उसके साथ-साथ उत्पादन प्रक्रिया भी क्रांतिकारी परिवर्तन लाया जा सका है वर्तमान में इस तथ्य को सर्वत्र स्वीकार किया जा रहा है। किन्तु साम्राज्यवादियों तथा उनकी अपनी प्राथमिकता क्या है ? उनकी पहली प्राथमिकता एस डी आई के साथ सम्बन्धित कार्यक्रमों के माध्यम से राष्ट्रों के समूहों पर कम्प्यूटरीकृत पुलिस शासन थोपने के उद्देश्य से इसे नयी प्रौद्योगिकी को उपयोग में लाना है।

वर्तमान में पैंटागन तथा व्हाईट हाउस की ओर से सम्पूर्ण विश्व पर निरंतर कड़ी दृष्टि रखी जा रही है। उल्लेखनीय संख्या में लोगों के आंदोलनों तथा विश्व के किसी भी भाग में पड़ी सामग्री का तत्काल पता लगाया जाता है, उसका विश्लेषण तथा लेखा जांच की जाती है और यह सारा काम कम्प्यूटर नेटवर्क के माध्यम से किया जाता है। कम्प्यूटर तथा सूचना नेटवर्क साम्राज्यवाद के उपकरण बन चुके हैं और इसके साथ ही वे विश्व के राष्ट्रों पर मनोवैज्ञानिक युद्ध थोपने की योजनाएं बनाते हैं। सैन्य गतिविधियों तथा हवाई हमलों की योजना बनाई तथा दक्षता एवं सूक्ष्मता के अज्ञात मानकों के माध्यम से इन योजनाओं को

कार्यान्वित किया जा सकता है। और विश्व भर में स्थापित इन सभी सुपर कम्प्यूटर सुरक्षा तथा सैनिक अड्डों को नाभिकीय तथा परम्परागत शस्त्रों से सुसज्जित किया गया है। इनका उपयोग करके अथवा इन्हें छोड़ कर पूरी पृथ्वी तथा उसके प्राणी जीवन को अनेक बार जला कर राख किया जा सकेगा।

हम सब जाते हैं कि अमरीकी किस प्रकार आक्रमणकारी ढंग से भारत को नाभिकीय क्षमता तथा सूचना प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित प्रौद्योगिकीयों को प्राप्त करने से रोक रहे हैं। उन्होंने हमें डरा-धमका कर एन पी टी पर भी हस्ताक्षर कराने का प्रयास किया है और हमारे नाभिकीय कार्यक्रमों के सम्बन्ध में निंदा अभियान चला रहे हैं जबकि हमारा कार्यक्रम मूल रूप से शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिये ही है। हमारे अंतरिक्ष कार्यक्रम पर भी धावा बोला जा रहा है; उसे सैनिक साहसिक कार्रवाई का नाम दिया जा रहा है और उन्होंने रूस के क्रायोजोनिक इंजनों के लिये प्रौद्योगिकीय सौदे को प्रभावशाली ढंग से समाप्त कराया था। यहां तक कि अमरीका द्वारा हमें सुपर कम्प्यूटर हार्डवेयर के आयात हेतु वाणिज्यक सौदे करने की अनुमति भी नहीं दी जा रही। यह भी एक तथ्य है कि अमरीका की कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी के एक उल्लेखनीय भाग को भारतीय मस्तिष्क की शक्ति ने ही विकसित किया था।

अमरीका द्वारा अनेक हमले किये गए और इन हमलों में उसे अपने साम्राज्यवादी सहभागियों का पूर्ण समर्थन एवं सहयोग प्राप्त था, ये हमले अतीत में हुए और वर्तमान में भी हो रहे हैं; इन्हें उसके भूमण्डलीय सैन्य प्रभुत्व की पृष्ठभूमि में देखा जा सकता है। वर्ष 1991 में अरबों के विरुद्ध छेड़ा गया विनाशकारी युद्ध और इराक की जनता के विरुद्ध दीर्घावधि से लागू की गई आर्थिक नाकाबंदी को अमरीकी शासक सद्दाम की धृष्टता के नाम पर न्यायोचित करार दे रहे हैं। और अब छह वर्ष पश्चात् 25 मार्च को अमरीकी नेवी तथा स्थल सेना के दस्ते जायरे (कांगो) भेजे गए। इस बार जायरे की राजधानी में ठहरे अमरीकी नागरिकों की रक्षा करने के नाम पर यह कार्रवाई की गई थी। फ्रांस की पहले ही अफ्रीका में सैन्य उपस्थिति है; उसने वहां अपने 10,000 सैनिक तैनात किये हैं और ब्रिटेन भी कुछ ऐसे ही कारणों से उस महाद्वीप में अपनी सैन्य उपस्थिति चाहता है तथा इसके लिये योजनाएं बना रहा है। जी-7 देशों में पहले ही एक अफ्रीकी सेना के लिये संयुक्त रूप से धन देने के लिये विचार विमर्श चल रहा है ताकि अफ्रीका में शांति प्रक्रिया की सहायता की जा सके और अफ्रीकी राष्ट्रों को लोकतंत्र का नया पाठ पढ़ाया जा सके। साम्राज्यवादी देश इसके लिये पुराने सिद्धान्त का सहारा ले रहे हैं। वह पुराना सिद्धान्त क्या है? यह है- दक्षिणी महाद्वीपों को सभ्य बनाने का बोझ श्वेत लोगों द्वारा उठाना।

6. बाजार विचारधारा का मिथक

साम्राज्यवाद के नये सिरे से होने वाले हमलों को उसकी विचारधारा का समर्थन मिल

रहा है। यह बाजार स्थल की एक हिंसक विचारधारा है जहां प्रत्येक उससे अधिक लेने का प्रयास करता है, जितना वह देता है। यह वही विचारधारा है जिसके चलते एशिया, अफ्रीका तथा अमरीकी महाद्वीपों के राष्ट्रों को जीता गया, उनकी लूट मचाई गई और उन्हें दास बना लिया गया था। निजी उत्पादन, प्रतिस्पर्धा तथा मुक्त बाजार को वर्तमान में जीवन स्तर में सुधार लाने तथा उत्पादन प्रक्रिया को सुधारने के एक मात्र उपाय के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। उनके अनुसार यह कार्य प्रौद्योगिकी में सुधार लाकर तथा नवीकरण करने के माध्यम से किया जा सकता है। प्रत्येक परिकल्पना पर भरपूर बहस हो चुकी है। इन्हें अतीत में न केवल समाजवादी चिंतकों ने अपितु उदारवादी बुद्धिजीवियों तथा अर्थशास्त्रियों तक ने भी रद्द कर दिया था।

बाजार की विचारधारा ने अमीरका तथा पूर्वी यूरोप की जनता की क्या सहायता की थी? यूरोप की बेरोजगारी 1974 में तीन प्रतिशत से भी कम थी; यह वर्तमान में ग्यारह प्रतिशत हो चुकी है। उत्तरी अमरीका विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमरीका विश्व के सभी भागों के प्रवासी श्रमिकों के लिये आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है। अमरीकी अर्थ व्यवस्था की बड़ी शक्ति प्रवासी श्रमिकों की सस्ती मजदूरी और तृतीय विश्व के देशों से होने वाला बौद्धिक पलायन है। पिछले दो दशकों में उत्तरी अमरीका में बेरोजगारी की दर कम नहीं हुई, यह सदा छह से दस प्रतिशत के मध्य रही है। यहां तक कि जापान में भी बेरोजगारी की दर दोगुणा हो चुकी है। वर्ष 1974 में यह दर जहां दो प्रतिशत थी वहीं वर्तमान में चार प्रतिशत तक पहुंच चुकी है। जहां तक जीवन की गुणवत्ता का प्रश्न है; अमरीका विश्व में बाजार अर्थ व्यवस्था की सबसे खराब उदाहरणों में से एक है। वर्ष 1995 में किये गए एक सर्वेक्षण के अनुसार अमरीकी बच्चों की कुल संख्या के पांचवें भाग से भी अधिक संख्या में बच्चे (21.1 प्रतिशत) दरिद्रता की दलदल में फंसे हुए हैं, 27 प्रतिशत अमरीकी बच्चे माता - पिता में से केवल एक के साथ रह रहे हैं; इन सभी मामलों में और उनके साथ-साथ दक्षिणी राज्यों में स्थिति के सामाजिक-संकेतकों के अनुसार वहां की स्थिति और भी अधिक भयावह बनी हुई है अर्थात् खराब है।

सामाजिक मोर्चे पर इतनी खराब स्थिति होने पर भी पूंजीवाद के समर्थक बाजार अर्थ व्यवस्था के पक्षधर बने हुए हैं। उनका तर्क है कि केवल बाजार की प्रतिस्पर्धा ही नयी प्रौद्योगिकी का सृजन कर सकती है और इस प्रकार मानव समाज की प्रगति को सुनिश्चित बनाया जा सकता है। यह सत्य है कि पूंजीवाद तथा मुक्त व्यापार ने उत्पादन की प्रक्रिया में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है और सामंतवाद, जन जातीय एवं खानाबदोश समाजों की तुलना में पूंजीवादी समाज के भीतर उत्पादन सम्बन्धों में भारी सुधार हुआ है। यह भी सर्वविदित है कि प्रतिस्पर्धा की अंतिम परिणति इजारेदारी के रूप में होती है और उससे भी आगे चल कर इजारेदार राज्य अस्तित्व में आ जाते हैं। केवल उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन ही नहीं अपितु उत्पादन के साधन, अर्थात् मशीनें तथा प्रौद्योगिकी जिनकी उत्पादन के लिये

आवश्यकता होती है अंतत: इजारेदारों के हाथों में चले जाते हैं; वे स्वयं उनका निर्माण करने लगते हैं। उसकी योजना इजारेदार निगमों तथा राज्य द्वारा बनाई जाती है, नयी प्रौद्योगिकी का विकास करने वाली बाजार अर्थव्यवस्था द्वारा नहीं। इन प्रस्तावों के लिये अच्छे तर्क दिये जाते हैं। यहां तक कि प्रोफैसर गालब्रेथ जैसे उदारवादी अर्थ शास्त्री जो अमरीकी संस्थापकों के लिये किसी काम के नहीं हैं, भी बढ़ चढ़ कर इसी प्रकार के तर्क दे रहे हैं।

अंतरिक्ष, संचार तथा कम्प्यूटर नेटवर्क प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हाल ही में घटित घटनाएं यह दर्शाने के लिये पर्याप्त उदाहरण उपलब्ध करा देती हैं कि बाजार प्रतिस्पर्धा समकालीन विश्व में मूल प्रौद्योगिकीय विकास में कोई भूमिका नहीं निभाती। नासा तथा अमरीकी अंतरिक्ष कार्यक्रम जिसका संचालन उसके द्वारा किया जाता है, का बाजार अर्थव्यवस्था के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। सम्पूर्ण इंटरनेट प्रौद्योगिकी तथा इंटरनेट को अमरीका के तारा जंग कार्यक्रम के अन्तर्गत विकसित किया गया था। इसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। अमरीकी विश्व विद्यालयों ने उसके लिये सार्वजनिक धन का उपयोग किया था।

इसमें संदेह नहीं कि बिल गेट्स तथा अन्यों ने अरबपति बनने के लिये इन सुविधाओं तथा अवसरों का उपयोग किया था। बाजार के खिलाड़ियों ने राज्य के एकाधिकार में सम्पन्न कम्प्यूटर क्रांति में क्या योगदान दिया और कैसी भूमिका निभाई थी, इसका निर्णय तो हमारे भावी इतिहासकार ही करेंगे। ये निजी संचालक सदा अपनी सामग्री जो पूर्णतया तैयार भी नहीं होती, को लेकर बाजार की ओर दौड़ते हैं और उल्लेखनीय श्रम शक्ति व्यर्थ में ही गंवा देते हैं, न केवल इस अर्ध निर्मित सामग्री के विपणन हेतु अपितु एक के बाद एक और सुधरे माडल तथा रूपों को विकसित करने के मामले में भी। इसकी उदाहरण हाल ही में उत्पन्न एक समस्या है। इस समस्या को विश्व भर में कम्प्यूटर बिक्रेताओं के मध्य 2-के रूप में जाना जाता है। लाखों-लाख कम्प्यूटर तथा साफ्टवेयर पेकैज विश्व भर में उपयोग में लाए गए, किन्तु 1999 के आगे के वर्षों के लिये कलेंण्डर नहीं हैं। इन कम्प्यूटरों का उपयोग करने वाले लाखों-लाख लोगों को अब वर्ष 1999 के आगे कम्प्यूटर की गणना सीखने के लिये विपुल धन राशि खर्च करनी पड़ रही है। और यह बाजार प्रतिस्पर्धा की प्रौद्योगिकीय दक्षता के मिथक का प्रतीक है।

7. साम्राज्यवाद के विरुद्ध विचारधारक युद्ध

अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवादियों ने विश्व के राष्ट्रों पर अपनी दादागिरी को न्यायोचित करार देने के लिये बाजार प्रतिस्पर्धा की प्रभावोत्पादकता अथवा क्षमता के कार्ड का भरपूर उपयोग किया है। साम्राज्यवादियों के विचारधारक युद्ध की विधियां उनकी श्रेष्ठता अथवा बाजार में उनकी प्रधानता स्थापित कर लेने तक ही सीमित नहीं हैं। ये मानवाधिकार से लेकर पर्यावरण तक के मुद्दों की पूरी परिधि से बाहर चली गई हैं। उनके नेता अमरीकी

साम्राज्यवादियों द्वारा अपने भूमण्डलीय कार्यक्रमों का संचालन दोगलेपन तथा धोखादेही के साथ किया जा रहा है।

* विश्व के राष्ट्रों के विरुद्ध असंख्य युद्ध अपराधों तथा उस देश (अमरीका) के जेल आंकड़ों को देखने से पता चलता है कि मानवाधिकारों का सबसे बड़ा (एवं खराब) उल्लंघनकर्त्ता स्वयं अमरीकी साम्राज्यवाद ही है।

* अमरीका राष्ट्रों के मध्य शांतिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के मामले में स्वयं को चैम्पियन के रूप में प्रस्तुत करता है, किन्तु उसने शीत युद्ध समाप्त हो जाने के पश्चात् भी विश्व भर में अपने सैनिक अड्डे पूर्वत: बनाए रखे हैं।

* नाभिकीय बमों का परीक्षण करते चले जाने वाला अमरीका ही एक मात्र राष्ट्र है, किन्तु वह विश्व में प्रत्येक दूसरे राष्ट्र को नाभिकीय नैतिकता का पाठ पढ़ाता है।

* नाभिकीय शास्त्रों का सबसे बड़ा भण्डार अमरीका के पास ही है किन्तु इस पर भी वह नाभिकीय अप्रसार संधि का घोर समर्थक बना बैठा है।

* अमरीका विश्व के पर्यावरण को खराब करने वाला सबसे बड़ा प्रदूषक देश है, किन्तु इस पर भी वह स्वयं को विश्व पर्यावरण के ध्वज वाहक के रूप में प्रस्तुत करता है।

* वे लोक़तंत्र का झण्डा ऊँचा रखने का दावा तो करते हैं, किन्तु सभी प्रकार की अधिनायवादी तथा निरंकुश सत्ताओं को समर्थन देना, उनका रिकार्ड रहा है।

* अमरीकी राजनीतिक व्यवस्था का लोकतांत्रिक आधार इतना संकुचित है कि कठिनाई से उसके एक तिहाई नागरिक चुनाव प्रक्रिया में भाग ले पाते हैं और 15 प्रतिशत वैध मत प्राप्त करके अथवा उसके समर्थन से कोई भी व्यक्ति देश का राष्ट्रपति बन सकता है।

* अमरीका एक ओर मुक्त बाजार का दम भरता है जबकि दूसरी ओर अपने विदेश व्यापार में गैर भाड़ा दरों की अनेकानेक बाधाएं खड़ी करता है; उसके द्वारा अत्यंत प्रचारित भारी सुविधाएं प्राप्त राष्ट्र (अर्थात् एम एन एफ) के दर्जे का अर्थ उसके साथ सामान्य व्यापार रखने वाला राष्ट्र है।

* अमरीका मुक्त बाजार व्यवस्था तथा तृतीय विश्व के देशों की अर्थ व्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं करने के लिये उपदेश देता है किन्तु अमरीका में सरकारी व्यय सकल घरेलू उत्पाद का लगभग आधा भाग है।

* अमरीका विश्व के प्रत्येक दूसरे देश को मितव्ययी बनने का उपदेश देता है किन्तु उसका प्रति व्यक्ति विदेशी ऋण विश्व भर में सर्वाधिक है।

* अमरीका महिला अधिकारों का विश्व में सबसे बड़ा ध्वज वाहक है, किन्तु वह महिलाओं के लिये दमनकारी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का समर्थन करता है।

* वह बाल मजदूरी के विरुद्ध संघर्ष करने वाला भूमण्डलीय योद्धा है, किन्तु बाजार व्यवस्था से पीड़ित बच्चों एवं वंचितों के कल्याणार्थ बहुत कम कार्रवाई करने वाला देश है।

* अमरीका बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का भूमण्डलीय चैम्पियन है, किन्तु तृतीय विश्व के देशों की बौद्धिक सम्पदा की लूट मचाने और उनकी बौद्धिक शक्ति का दोहन करने के मामले में भी उसका कोई जवाब नहीं है।

ऊपर केवल दस उदाहरणें दी गईं हैं। ये उदाहरणें अमरीकी साम्राज्यवादियों के दोगलेपन के साथ सम्बन्ध रखती हैं। इनसे पता चलता है कि विश्व साम्राज्यवादियों का यह नेता कहता क्या है और करता क्या है। धोखादेही तथा दोगलापन बाजार अर्थव्यवस्था के प्रमाण चिन्ह हैं। नेता जो प्रचार करता है, उसका अनुसरण उसके सहयोगी अन्य साम्राज्यवादी देश करते हैं। विश्व श्रमिक आंदोलन के लिए अनिवार्य हो जाता है कि वे इस प्रचार का ठोस तथ्यों एवं आंकड़ों की सहायता से विरोध एवं प्रतिरोध करें।

8. विश्व श्रमिक आंदोलन का प्रत्युत्तर

विश्व भर में श्रमिक आंदोलन ने कारखाना स्तर पर, राष्ट्रीय स्तर पर और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्पूर्ण विश्व की श्रमजीवी जनता और उसके साथ-साथ तृतीय विश्व के देशों के विरुद्ध पूंजीपतियों तथा साम्राज्यवादियों द्वारा किये जा रहे आक्रमणों का नोटिस लिया है। भारत सहित तृतीय विश्व के अन्य देशों में श्रमिक संघों तथा श्रमिकों द्वारा अत्यंत साहस के साथ इसका प्रतिकार किया जा रहा है। इससे सम्बन्धित समाचार निरंतर हमें मिल रहे हैं। यहां तक कि स्वयं साम्राज्यवादी देशों में भी श्रमिक वर्ग इसका प्रतिकार कर रहा है। इसका वर्णन महाधिवेशन में प्रस्तुत अध्यक्ष तथा महासचिव की रिपोर्ट में भी किया गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने अपने हाल ही के समाचार बुलेटिन (26 नवम्बर, 1996) में श्रमिक जनता पर भूमण्डलीय करण की प्रक्रिया के विनाशकारी प्रभाव की समीक्षा की है। विश्व भर में लगभग एक अरब लोग बेरोजगार हैं अथवा औद्योगिक एवं विकसित देशों में अर्ध-रोजगार प्राप्त हैं। अपनी रिपोर्ट विश्व रोजगार 1996-97, में आइ एल ओ ने विश्व भर में रोजगार की स्थिति को शोचनीय बताया है...। विश्व के समृद्धतम राष्ट्रों अर्थात् ओ ई सी डी के सदस्य देशों में कम से कम 3.40 करोड़ लोग बेरोजगार हैं।

बुलेटिन में विभिन्न क्षेत्रों तथा देशों के बेरोजगारी सम्बन्धी आंकड़े निरंतर दिये जा रहे हैं और ये आंकड़े परेशान कर देने वाले हैं, इस रिपोर्ट के अंत में कहा गया है कि, "बेरोजगारी के वर्तमान स्तर का कोई आर्थिक औचित्य नहीं है और न ही वह सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से स्थायी रह सकता है।" आइ एल ओ के महानिदेशक एम हैनसैन ने पूर्ण रोजगार के आदर्श को त्याग दिये जाने के विरुद्ध चेतावनी दी है। यही वह आदर्श था जिससे द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के दशकों में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक नीति

संचालित होती थी।

किन्तु दस्तावेज में सामाजिक तथा राजनीतिक शक्तियों तथा विचारधारा जिसे नीतिगत परिवर्तनों से दो-चार होना पड़ रहा है, को सिद्धान्त रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया। वास्तव में दस्तावेज का तर्क है कि पुर्नसंरचनात्मक कार्यक्रम जिसे विश्व बाजार तथा बाजार की विचारधारा में भूमण्डलीय स्तर पर एक नये विश्वास के साथ लागू किया जा रहा है, उस वर्तमान रुझान का कारण नहीं हो सकता जिसे रोजगारहीन विकास कहा जाता है।

डब्ल्यू एफ टी यू जिसने समाजवादी शिविर के दिनों में विश्व के श्रमिक आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई थी, ने अभी तक अपनी प्रभावकारिता को पुनः प्राप्त नहीं किया है। मुक्त श्रमिक संघों के अन्तर्राष्ट्रीय परिसंघ (आइ सी एफ टी यू) ने भी पिछले वर्ष जून में आयोजित अपने 16वें विश्व सम्मेलन में रोजगार मोर्चे की चौंका देने वाली स्थिति तथा उसकी सामाजिक एवं राजनीतिक प्रतिक्रियाओं की समीक्षा की थी। आइ सी एफ टी यू एक ऐसा परिसंघ है जिसके ओ ई सी डी, आइ वी आर डी तथा आइ एल ओ के साथ निकट सम्बन्ध हैं। वह इन सभी विश्व संस्थाओं तथा विभिन्न सरकारों के साथ विचार विमर्श करके समस्याओं का समाधान ढूंढ निकालने में विश्वास रखता है। सामाजिक विकास के लिये कोपेनहेगन सम्मेलन में व्यक्त की गई भावनाओं को इस दस्तावेज में भी दोहराया गया है। अन्य श्रमिक संघों तथा क्षेत्रीय महासंघों द्वारा भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गए हैं। वे सभी वर्तमान में पूंजी के नये भूमण्डलीय हमलों पर चिंतित हैं।

श्रमिक वर्ग के कष्टों तथा श्रमिक आंदोलन की समस्याओं पर चर्चा करते समय श्रमिक संघों में व्याप्त नौकरशाही की प्रवृति सदा पहला विचारनीय विषय रही है। किन्तु उन्होंने सदैव इसी बात पर बल दिया है कि श्रमिकों तथा उनके संगठनों को पूंजीवादी व्यवस्था के मूल ढांचे में ही अपनी समस्याओं का समाधान ढूंढ़ निकालना चाहिये। एक शताब्दी से भी अधिक समय का हमारा अपना अनुभव तो यही है। उन्होंने कभी भी समाजवाद की परियोजना को विनम्रतापूर्वक ग्रहण नहीं किया है।

शीत युद्ध की समाप्ति के पश्चात् पूंजी द्वारा किये जा रहे आक्रमण हमें साम्राज्यवादियों के उन आक्रमणों का स्मरण कराते हैं जिनके चलते अव्यवस्था, अराजकता तथा रक्तिम विध्वंसक युद्धों की शताब्दी में मानवता को प्रवेश करना पड़ा था। "विश्व भर के श्रमिकों एक हो जाओ" का नारा इस नये भूमण्डलीय संदर्भ में नये अर्थ प्राप्त कर चुका है। कोई भी श्रमिक संघ इस नारे अथवा संदेश को विस्मृत करने की स्थिति में नहीं है।

9. सी आइ टी यू के लिये कार्रवाई योजना

सी आइ टी यू के नवम महाधिवेशन ने सोवियत संघ के विखण्डन तथा समाजवादी शिविर का पराभव होने के पश्चात् साम्राज्यवाद द्वारा किये जाने वाले नये हमलों को रेखांकित

किया है। उसने क्यूबा, उत्तरी कोरिया, वियतनाम तथा चीन द्वारा साम्राज्यवादी हमलों के विरुद्ध की जा रही प्रतिरक्षात्मक कार्रवाईयों को भी नोट किया है। तृतीय विश्व के अनेक देश जिनमें भारत भी सम्मिलित है, अपने-अपने ढंग से साम्राज्यवाद के हमलों एवं हथकण्डों के विरुद्ध प्रतिरक्षात्मक संघर्ष कर रहे हैं।

इन प्रयासों की सफलता अथवा असफलता का आंकलन स्वाभाविक रूप से केवल प्रत्येक देश द्वारा किये जाने वाले प्रयासों तथा उनकी आंतरिक नीतियों के साथ-साथ अन्तर साम्राज्यवादी सम्बन्धों के विकास पर भी निर्भर करता है। ज्यों-ज्यों पूंजीवादी विकास की समस्याएं तथा विरोधाभास परिपक्व होते हैं त्यों-त्यों इन सम्बन्धों में भी नाटकीय परिवर्तन होता चला जाता है। सी आइ टी यू को भूमण्डलीय परिदृश्य में घटित होने वाली इन घटनाओं पर गहरी नजर रखनी होगी और अपने देश, उसके श्रमिक वर्ग तथा सम्पूर्ण श्रमिक वर्ग के हितों को ध्यान में रखते हुए इन घटनाओं के घटने के साथ-साथ आंदोलन की कार्रवाईयों तथा अभियानों के सम्बन्ध में निर्णय लेना होगा। महाधिवेशन साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में अधोलिखित कार्रवाईयां करने की संस्तुतियां देता है।

(क) सी आइ टी यू के अन्तर्राष्ट्रीय विभाग को सुदृढ़ बनाना ताकि वह विश्व के श्रमिक संघों तथा महासंघों के साथ प्रभावी सम्बन्ध स्थापित करे; इन सम्बन्धों का सदुपयोग विश्व के श्रमिक आंदोलन में विचारधारक स्पष्टता लाने के लिये किया जाना चाहिये।

(ख) सी आइ टी यू को गुट निर्पेक्ष देशों तथा एशिया-प्रशांत क्षेत्र के श्रमिक आंदोलन में एकता तथा एकजुटता लाने के लिये विशेष प्रयास करने चाहियें।

(ग) विस्तृत अध्ययन तथा मूल्यांकन द्वारा साम्राज्यवादियों की पोल खोल कर साम्राज्यवादी आक्रमणों के विरुद्ध विचारधारक युद्ध छेड़ा जाना चाहिये।

(घ) कार्यकर्ताओं को साम्राज्यवादी आक्रमणों की प्रकृति समझाने के लिये राज्य केन्द्रों द्वारा कर्मशालाओं तथा संगोष्ठियों का आयोजन किया जाना चाहिये ।

(ङ) सी आइ टी यू को अन्य श्रमिक संगठनों और उनके साथ-साथ जन संगठनों के साथ मिल कर संयुक्त अभियान चलाने के मामले में नेतृत्वकारी भूमिका का निर्वहन करना चाहिये।

(च) वर्किंग क्लास, सीटू मजदूर तथा अन्य राज्य स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं के इन विषयों पर विशेष अंक निकाले जाने चाहियें ताकि इससे विचारधारक संघर्ष में सहायता मिल सके।

(छ) साम्राज्यवादी आक्रमणों का प्रतिकार करने वाले देशों तथा जनता के समर्थन में राष्ट्रीय स्तर पर एकजुटता की कार्रवाईयों का आयोजन किया जाना चाहिये।

(ज) अधोलिखित मांगों के लिये देश भर में अभियान चलाया जाना चाहिये:

(1) फिलीपीन्स, मयनमार, तथा एशिया, लातिनी अमरीका एवं अफ्रीका के अन्य

देशों में जहां वर्तमान में ट्रेड यूनियन अधिकार प्रदान नहीं किये जाते अथवा प्रतिबंधित हैं, पूर्ण ट्रेड यूनियन अधिकारों के लिये;

(2) संयुक्त राष्ट्र की कार्य प्रणाली का लोकतंत्रीकरण करने के लिये, सुरक्षा परिषद में वीटों की प्रणाली समाप्त की जानी चाहिये तथा महासभा को और अधिक शक्तियां प्रदान की जानी चाहिये;

(3) भारत जो मानवता के छटे भाग का प्रतिनिधित्व करता है, को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सीट दी जानी चाहिये;

(4) नाटो को समाप्त कर देना चाहिये;

(5) विदेशी धरती पर अमरीका के सैन्य अड्डों की तत्काल समाप्ति के लिये;

(6) इराक, क्यूबा तथा जनवादी कोरियां लोक गणराज्य के विरुद्ध सैनिक एवं व्यापारिक नाकाबंदियों को तत्काल समाप्त कराने के लिये।

जनवादी कार्य पद्धति

1. सी आइ टी यू सभी प्रकार के शोषण से समाज की पूर्ण मुक्ति चाहता है। यह मुक्ति केवल समाजवादी रूपातंरण से प्राप्त की जा सकती है। सी आइ टी यू ने अपने संविधान में घोषणा की है कि "उसका दृढ़ विश्वास है कि वर्ग संघर्ष के बिना सामाजिक रूपान्तरण नहीं हो सकता और वह श्रमिक वर्ग को वर्ग सहयोग के पथ पर ले जाने के प्रयासों का निरंतर प्रतिकार करता रहेगा।"

2. वर्ग संघर्ष के लिए इस प्रतिबद्धता तथा श्रमिक आंदोलन में वर्ग सहयोग की नीति से लड़ने के संकल्प को श्रमिक वर्ग की पंक्तियों में विशाल एकता को सुनिश्चित बना कर और संगठन में सभी पक्षों से तथा सभी स्तर पर जनवादी कामकाजी कार्य पद्धति को लागू करके ही पूर्ण किया जा सकता है। अत: सी आइ टी यू के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य जहां तक सम्भव हो सके अधिक से अधिक ट्रेड यूनियन जनवाद को सुनिश्चित बनाना है।

चुनौती तथा प्रत्युत्तर

3. इसलिये संगठन में जनवादी कार्य पद्धति को सुनिश्चित बनाने के उद्देश्य से सी आइ टी यू के संविधान में कुछ विशेष प्रावधान किये गये हैं जिनका अनुसरण किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त सी आइ टी यू के स्थापना सम्मेलन में कामरेड बी टी रणदिवे ने भाषण देते समय ट्रेड यूनियन जनवाद के वास्तविक अर्थों नीति के अत्याधिक महत्व पर बल दिया था।

4. जहां श्रमिक आंदोलन अपनी अवधारणा में सामाजिक रूपांतरण के साथ वर्ग संघर्ष के लिये प्रतिबद्ध होता है और उसके लिये सभी स्थितियों में जनवादी कार्य पद्धति भारी महत्व रखती है। वहीं पूंजी के सभी हमलों का सामना करते समय इसकी अनिवार्यता स्पष्ट रूप से उत्पन्न हो जाती है। भारत में शायद ही पहले कभी श्रमिक वर्ग के लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति को एकजुट एवं लामबंद करने की नितांत आवश्यकता उत्पन्न हुई हो जितनी वर्तमान में है। वर्ष 1991 के मध्य से विनाशकारी आर्थिक नीति के वास्तविक खतरे ने देश के श्रमिक वर्ग को इस चुनौतीपूर्ण स्थिति में ला खड़ा किया है।

5. सी आइ टी यू ने तत्काल इस चुनौती का प्रत्युत्तर दिया है, इसमें संदेह नहीं। उसने

निरंतर श्रम साध्य प्रयास करके प्रमुख केंद्रीय श्रमिक संगठनों तथा औद्योगिक महासंघों (फेडरेशन्स) पर आधारित एक संयुक्त मंच का गठन किया, आर्थिक नीतियों के विरुद्ध संघर्ष में स्पानसॅनिंग कमेटी की स्थापना की गई और बाद के चरण में जन संगठनों के राष्ट्रीय मंच का गठन किया गया जिसमें श्रमजीवी जनता की अन्य सभी श्रेणियों और खेत मजदूर, किसान सभाओं, युवाओं, छात्रों तथा महिला संगठनों जैसे जन संगठनों को सम्मिलित किया गया। किन्तु इस प्रक्रिया के प्रारंभिक चरणों में सम्पूर्ण श्रमिक वर्ग तथा जनता की अन्य श्रेणियों को लामबंद करने के ऐतिहासिक कार्य को पूर्ण करने, इस नीति का प्रतिकार करने और अन्ततोगत्वा उसे परास्त करने के लिए सी आइ टी यू को अपनी सांगठनिक शक्ति अपर्याप्त होने का बोध हुआ। इसके तत्काल पश्चात् शायद संगठन सी आइ टी यू, की स्थापना के 22 वर्षों में पहली बार सांगठनिक स्थिति तथा सी आइ टी यू की कार्य प्रणाली की व्यापक समीक्षा की गई।

सांगठनिक समीक्षा

6. समीक्षा करते समय रेखांकित किया गया कि पूंजी के बढ़ रहे हमलों के विरुद्ध सामान्य संघर्ष में श्रमिक संघों को एकजुट करने तथा तीव्र गति के साथ इन संघर्षों को नेतृत्व देने पर भी सी आइ टी यू का संगठन सदस्य संख्या में प्रारंभिक वृद्धि होने के पश्चात् निश्चल हो गया है अथवा पठार जैसी स्थिति में पहुंच गया है। इसके और विकसित होने के मार्ग में अनेक दुर्बलताएं आड़े आती हैं और इन दुर्बलताओं का एक प्रमुख कारण जनवादी कार्य पद्धति के सिद्धांतों का पालन नहीं करना है, इसके विपरीत संगठन का विकास अवरुद्ध हो गया है। सी आइ टी यू उनके सभी शब्दों पर समीक्षा की प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात् जून 1993 में संगठनात्मक रिपोर्ट पारित की गई। उस रिपोर्ट में जनवादी कार्य पद्धति के नियमों का पालन न करने तथा संगठन में आए भटकावों को स्पष्ट किया गया। इन भटकावों को दूर करने के लिये सिद्धानात्मक उपायों के रूप में .....कार्य निश्चित किये गये एक वर्ष .....सी आइ टी यू के आठवें महाधिवेशन द्वारा पारित आयोग के दस्तावेज में एक बार पुन: जनवादी कामकाजी पद्धति पर बल दिया गया।

7. यद्यपि कुछ स्थानों पर और कुछ पक्षों से स्थिति में कुछ सुधार दिखाई देता है किन्तु आवश्यक परिवर्तन की तुलना में जो परिर्वतन अथवा सुधार आया है वह भी अपेक्षा से कहीं कम है । क्या हम इस स्थिति को जारी रख सकते हैं? यदि हम ऐसा कर सकते हैं तो हम अधिक समय तक प्रभावशाली ढंग से उस ऐतिहासिक भूमिका का निर्वहन नहीं कर सकेंगे जिसे हम पिछले तीन वर्षों से निभाते चले आ रहे हैं। इसका श्रेय श्रमिक आंदोलन को एकजुट रखने वाली हमारी ट्रेड यूनियन नीति को जाता है। हमें इस प्रमुख दुर्बलताएं दूर करने के लिये गंभीरतापूर्वक अपने प्रयास जारी रखने चाहियें और इस सम्बंध में यदि हम विफल

रहते हैं तो उसका क्या प्रभाव होगा, हमें उसका बार-बार स्मरण करना होगा।

8. जब हम ट्रेड यूनियन जनवाद अथवा कार्य पद्धति की बात करते हैं तो हमें ये दो भिन्न-भिन्न बातें प्रतीत होती हैं, किन्तु वास्तव में इन दोनों का गहरा अन्त: सम्बन्ध है। ट्रेड यूनियन जनवाद का पहला पक्ष यूनियन के निचले स्तर के कार्यकर्ताओं के प्रति नेतृत्व के रुख तथा एक ओर यूनियन कार्यकर्ताओं के साथ और दूसरी ओर सामान्य श्रमिकों के साथ नेताओं के सम्बन्धों के साथ सम्बन्ध रखता है। दूसरे पक्ष का सम्बन्ध समितियों के कामकाजी नियमों, समिति के सदस्यों के मध्य कामकाजी सम्बन्धों इत्यादि के साथ है। जनवादी कार्य पद्धति के इन दोनों पक्षों की दृष्टि से हमारे भीतर गंभीर दुर्बलताएं पाई जाती हैं।

यूनियनें तथा साधारण श्रमिक

9. ट्रेड यूनियन जनवाद के पहले पक्ष की कामरेड बी टी रणदिवे ने सी आइ टी यू के स्थापना सम्मेलन में समापन भाषण देते समय विस्तृत विवेचना की थी। उन्होंने कहा था- "अधिकांश यूनियनों में- एक साधारण श्रमिक की स्थिति अतिथि जैसी ही होती है, उसकी स्थिति उस व्यक्ति जैसी नहीं होती जिसका यह (यूनियन) किला होता है, जिसका यह अपना घर होता है।" उन्होंने आगे कहा था, "एक रुझान पाया जाता है कि यूनियन को श्रमिकों एवं श्रमजीवी जनता का एक विशाल संगठन बनाने की अपेक्षा कुछेक नेताओं के लिये ही आरक्षित रखा जाए," और वह जागरूकता जो हमने उनमें उत्पन्न की हैं, ऐसी है कि स्वयं श्रमिक इस स्थिति को स्वीकार कर लेते हैं, वे समझने लगते हैं कि यूनियन का काम करना केवल नेताओं का ही कारोबार है। उन्होंने कहा था, "...हमारा संघर्ष श्रमिक वर्ग की एकता का संघर्ष है, यह संघर्ष आंदोलन का संघर्ष है। सभी श्रमिकों के साथ एकता स्थापित की जानी चाहिये...ट्रेड यूनियन एकता...प्रतिरोध की एकता का तात्पर्य प्रत्येक श्रमिक चाहे वह किसी संगठन के साथ सम्बन्धित हो या न हो, सर्वसामान्य वर्ग संघर्ष में सम्मिलित किया जाना ही चाहिये।" इसे सुनिश्चित बनाने के लिए हमारे श्रमिक संघों को अपने झंडे तले एकत्रित होने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिये वास्तव में जीवंत संस्था बनना होगा और प्रत्येक श्रमिक को सोचना होगा कि यह उसका अपना किला है, यह नेताओं का किला अथवा उनका आवास नहीं है किन्तु एक सामान्य श्रमिक का घर है। "हम यूनियन में जनवादी कार्य पद्धति लागू करने की मांग करते हैं...क्योंकि हम श्रमिकों को सामान्य संघर्ष में खींच लाना चाहते हैं। वह केवल उसे मूक दर्शक बनकर देखता न रहे अपितु एक सक्रिय सहभागी के रूप में, सक्रिय नेताओं के रूप में उसमें भाग ले...जब तक हम श्रमिक वर्ग में काम करते समय जनवादी कार्य पद्धति को नहीं अपनाएंगे तब तक हम श्रमिकों को एकजुट करने में सफल नहीं होंगे...हम में से प्रत्येक साथी को स्वयं अपनी जागरूकता में परिवर्तन लाना होगा, हमें पुरानी जागरूकता तथा पुरानी कार्य पद्धति का परित्याग करने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ होना

होगा...।''

10. 22 वर्ष के पश्चात् संगठनात्मक रिपोर्ट में उसी दुर्बलता को रेखांकित किया गया है जैसा कि कामरेड बी टी रणदिवे ने अपने समापन भाषण में उल्लेख किया था, ''हमारी यूनियनों में साधारण श्रमिकों की सहभागिता केवल निष्क्रिय होती है। श्रमिकों को सक्रिय भागीदारी में लाने के लिये आवश्यक स्थितियां होनी चाहियें।''

11. अनेक श्रमिक संघों तथा सी आइ टी यू समितियों के सम्मेलन नियमित रूप से नहीं होते जबकि इनमें प्रमुख नीतिगत निर्णय लिये जाते हैं। ऐसे उद्धरण भी देखने-सुनने को मिल जाते हैं जहां 8-10 वर्षों से सम्मेलनों का आयोजन नहीं किया गया। जहां प्रतिनिधियों की प्रणाली काम करती है वहां पर भी प्रतिनिधियों का चयन जनवादी पद्धति से नहीं किया जाता- सी आइ टी यू के अखिल भारतीय महाधिवेशन का मामला भी कुछ ऐसा ही है। सम्मेलनों का अधिकांश समय नेतागण रिपोर्ट प्रस्तुत करते तथा भाषण देने में ही चट कर जाते हैं जबकि साधारण सदस्यों तथा प्रतिनिधियों के बोलने के लिये बहुत कंम समय शेष रह जाता है। सम्मेलन में कार्यकारी समिति का समुचित चुनाव जनवादी कार्य पद्धति का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। कयोंकि सम्मेलन ही नियमित रूप से नहीं होते इसलिये उनके चुनाव भी नियमित नहीं होते। साधारण सदस्यों को मुक्त रूप से अपने नेताओं का चुनाव करने के लिये बहुत कम अवसर मिलता है। वे अपने प्रत्याशियों तक के नाम प्रस्तुत नहीं कर पाते। सीटू समितियों तथा श्रमिक संघों के नेतृत्व का निर्णय करने के मामले में बाहरी कारकों की भूमिका अधिक होती है। जनरल बाडी बैठकों की स्थिति भी लगभग ऐसी ही है:अनेक श्रमिक संघ तथा समितियां जनरल बाडी बैठकों का आयोजन नहीं करतीं और जहां कहीं उनका आयोजन किया भी जाता है वहां सम्पूर्ण सदस्य संख्या की सहभागिता सुनिश्चित बनाने के लिये बहुत कम प्रयास किया जाता है। सम्मेलनों की भांति जनरल बाडी बैठकों में भी नेता लोग अपनी बात कहने में ही अधिकांश समय व्यतीत कर देते हैं। अनेक मामलों में तो जनरल बाडी बैठकों में केवल नेतागण के भाषण ही सदस्यों को सुनने को मिलते हैं। सी आइ टी यू के निदेशक समझौतों के प्रारूप पर भी अंतिम रूप हस्ताक्षर करने से पूर्व सदस्यों की स्वीकृति प्राप्त नहीं की जाती। निचले स्तर के कार्यकर्ताओं की आलोचनाओं की उपेक्षा कर दी जाती है। लेखा-खाते भी ठीक ढंग से रखे नहीं जाते और न ही उन्हें सदस्यों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इसके अतिरिक्त श्रमिक संघ शायद ही कभी श्रमिकों की विशाल संख्या की सामाजिक सांस्कृतिक समस्याओं और अन्य प्रश्नों पर अपनी चिन्ता का प्रदर्शन करते हैं।

12. लगभग चार वर्ष पूर्व पारित संगठनात्मक निपोर्ट में इन सभी तथा अन्य दुर्बलताओं पर सविस्तार चर्चा की गई थी और जनरल कौंसिल तथा वर्किंग कमेटी की सभी बैठकों में सभी श्रमिक संघों को बार-बार इसका स्मरण कराया गया, इस पर भी स्थिति में बहुत कम परिवर्तन आया है। सदस्य संख्या में कुछ वृद्धि अवश्य हुई है। किन्तु हम यह दावा कदापि नहीं कर सकते कि काम करने की हमारी पुरानी पद्धतियों में कुछ सीमा तक कोई परिवर्तन

हुआ है। यूनियन तथा साधारण सदस्यों के मध्य दूरी पूर्वत: बनी हुई है।

13. यह दूरी अब विचलित कर देने वाला कारक बन रही है। हाल ही में हमने देखा है कि बहुत दिनों से मान्यता प्राप्त यूनियन का दर्जा हासिल होने पर भी हमारी यूनियन को गुप्त मतदान में पराजय का मुंह देखना पड़ा है। इसके अतिरिक्त स्थानीय तथा विदेशी धन प्राप्त एजेंसियां इस स्थिति से लाभ उठा कर श्रमिकों में केंद्रीय श्रमिक संगठनों के प्रति उदासीनता का भाव उत्पन्न कर रही है, तथाकथित स्वतंत्र ट्रेड यूनियनवाद को प्रोत्साहन दे रही हैं और देश में श्रमिक आंदोलन में विभाजन के बीज बो रही हैं।

14. अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि जनवादी कार्य पद्धति की वर्तमान विसंगतियों को और देरी किये बिना समाप्त किया जाना चाहिये। किन्तु धनात्मक रूप से श्रमिक संघों के साधारण सदस्यों की सक्रिय सहभागिता को प्राप्त करना न केवल आंदोलनों एवं हड़तालों के समय अनिवार्य हो जाता है अपितु हमारे द्वारा किये जाने वाले दैनदिन कार्यों में भी उनकी सहभागिता अनिवार्य हो जाती है। हमें और विलम्ब किये बिना कार्य पद्धति को ऐसा बनाना होगा कि श्रमिक संघों में श्रमिकों की रुचि बनी रहे। प्रथम, श्रमिक संघों को श्रमिकों की आजीविका, तथा जीवन जिसमें सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्ष भी सम्मिलित हैं, से सम्बन्धित प्रश्नों की ओर ध्यान देना चाहिये। दूसरे, सभी मामलों में श्रमिकों के विचार अवश्य पूछे जाएं, वे अपने विचारों की मुक्त अभिव्यक्ति कर सकें, इसे सुनिश्चित बनाया जाए। उसके द्वारा व्यक्त किये गए विचारों को महत्व दिया जाना चाहिये और निर्णय लेते समय उसे ध्यान में रखा जाए। श्रमिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में इतने संलिप्त होने चाहियें कि उनके भीतर यह भावना हो कि लिये गए सभी निर्णय "उनके अपने निर्णय हैं। तीसरे, साधारण सदस्यों तथा कार्यकर्ताओं को निरंतर निर्णयों को कार्यरूप देने तथा अन्य घटनाओं की सूचना देते रहना चाहिये। चौथे, यह सुनिश्चित बनाया जाए कि सभी स्तरों पर नेतृत्व का चुनाव स्वयं श्रमिकों द्वारा समुचित रूचि लेकर मुक्त रूप से किया जाए।

15. इससे भी आगे बढ़ते हुए हमें स्मरण रखना चाहिये कि हमारे प्रयास केवल अपने श्रमिक संघ के सदस्यों के लिये ही सीमित नहीं रहें अपितु साधारण श्रमिक तक भी इसका विस्तार किया जाना चाहिये। हमें अधिकाधिक गैर सदस्य श्रमिकों को यूनियन की गतिविधियों में खींच लाना चाहिये। इससे हम वर्ग संघर्ष के लिये प्रतिबद्ध श्रमिक संघ के मूलभूत उद्देश्य को प्राप्त कर सकेंगे। हमारे श्रमिक संघों के लिये अवश्यंभावी हो जाता है कि वे अपनी सदस्यता की संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठ कर सम्पूर्ण श्रमिक वर्ग की बात करें।

समितियों के काम

16. जनवादी कार्य पद्धति का एक और पक्ष श्रमिक संघों के विभिन्न अंगों, समितियों,

परिपदों, सचिव मंडलों इत्यादि के कामों के साथ सम्बन्ध रखता है और इसी के भाग के रूप में यह पक्ष कार्यकर्ताओं के कार्यों तथा इस प्रक्रिया में अनेक आन्तरिक सम्बन्धों के साथ भी सम्बन्धित है। ये समितियां, परिषदें तथा सचिव मण्डल मिल कर एक संगठन के नेतृत्व के अवयव का गठन करते हैं। प्रत्येक अवयव (आर्गन) का एक विशेष कार्य होता है। उसकी कार्य पद्धति की प्रकृति का निर्धारण बहुधा नेतृत्व के दृष्टिकोण तथा रुख पर निर्भर करता है। यह समझना कठिन नहीं है। यदि नेतृत्व का रुख जनवादी नहीं है तो विभिन्न चरणों (टायर्स) का नेतृत्व जनवादी ढंग से काम नहीं कर सकेगा। कोई भी व्यक्ति इसके बिना श्रमिक संघ के मामलों में साधारण सदस्य तथा श्रमिकों की सक्रिय सहभागिता की कल्पना भी नहीं कर सकता। इस संदर्भ में भी संगठनात्मक रिपोर्ट में गम्भीर दुर्बलताओं को रेखांकित किया गया है।

17. रिपोर्ट में सम्मेलों, चुनावों तथा जी बी बैठकों के सम्बन्ध में रेखांकित किया गया था, ठीक उसी प्रकार अनेक मामलों में सी आइ टी यू की समितियां तथा परिषदें नियमित रूप से अपनी बैठकों का आयोजन नहीं करतीं। जब ये बैठकें होती भी हैं तो उनकी समुचित ढंग से तैयारी नहीं की जाती। इसके दुष्परिणाम स्वरूप समितियों/परिषदों के सदस्य अपना प्रभावी योगदान दे नहीं पाते। प्राय: नेतागण अधिकतर अपनी बात कहते रहते हैं और वे सदस्यों को बोलने का अवसर ही नहीं देते। यहां तक कि श्रमिक संघ में सक्रिय परिषदों तथा समिति के सदस्यों को भी यह अवसर प्राप्त नहीं होता जिससे वे अनुभव कर सकें कि संगठन की नीति का निर्धारण करने के मामले में उनकी भी कोई भूमिका है। वे अनिवार्य रूप से निष्क्रिय हो जाते हैं। श्रमिक संघों के सारे कार्य का दायित्व कुछ पदाधिकारियों के कंधों पर ही आ जाता है।

18. यहां तक कि पदाधिकारी भी परस्पर नियमित रूप से विचार विमर्श नहीं करते, उनकी नियमित अन्तराल में बैठकें नहीं होतीं और न ही सचिवमंडल की बैठकें की जाती हैं, उनके मध्य परस्पर सूचनाओं के आदान-प्रदान की कोई व्यवस्था नहीं है। अन्ततोगत्वा यूनियन अथवा समिति के सभी मामलों का नियंत्रण प्राय: अध्यक्षों तथा सचिवों अथवा उनमें से भी किसी एक के हाथ में केंद्रित होकर रह जाता है। इससे नौकरशाही की संवृत्ति के पनपने की सम्भावनाओं का बढ़ जाना स्वाभाविक ही है। इस अत्यंत घातक रुझान का घुन संगठन की जीवन क्षमता को ही चट कर जाता है।

19. पदाधिकारियों अथवा सचिव मंडल जो नेतृत्वकारी निकाय होते हैं, में जनवादी कार्य पद्धति का अर्थ है सामूहिक कार्य पद्धति। नेतृत्व की सामूहिक कार्य पद्धति के लिये निरंतर सूचनाओं का आदान-प्रदान करने, निरंतर सामूहिक विचार विमर्श करने, विचार विनिमय करने, की आवश्यकता है। इसमें विचार तथा समझदारी की विशाल एकता बनती है तथा कामों इत्यादि का समुचित विभाजन हो पाता है। सामूहिक कार्य पद्धति समूह की पद्धति है।

अध्यक्ष तथा सचिव को दल के नेता के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करना होता है। समूह के नेता के रूप में उन्हें सुनिश्चित बनाना चाहिये कि समूह के प्रत्येक सदस्य को उसकी योग्यता तथा झुकाव के अनुसार अच्छे से अच्छा काम करने का अवसर प्रदान किया जाए और यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार अपना काम करता है। जहां तक संभव हो सके संगठन के हित में सभी सदस्यों के योगदानों को केंद्रित करे। उसे अत्यंत चौकसी से काम लेना होगा। उसे इस बात का ध्यान रखना होगा कि वह सुचेत अथवा अचेत दोनों प्रकार की अवस्थाओं में कहीं किसी एक गुट विशेष का नेता ही न बन जाए। दल का नेता "समान स्तर के लोगों में प्रथम" होगा और सभी साथियों के साथ समान व्यवहार करेगा। सामूहिक कार्य स्वस्थ्य पद्धति के ये कुछ विशेष लक्ष्ण होते हैं। निजी कार्य पद्धति सामूहिक कार्य पद्धति के विपरीत होती है। जिसका अर्थ है कोई पदाधिकारी काम के कुछ पक्षों के सम्बन्ध में, व्यक्तिगत रूप से अपना निर्णय ले लेता है और व्यक्तिगत रूप से ही उन्हें कार्यान्वित करने लग जाता है जबकि उन पक्षों जिनके साथ उसका सम्बन्ध होता है और संगठन के अन्य पदाधिकारियों को अंधकार में रखा जाता है। पराकाष्ठा तो उस समय होती है जब कोई पदाधिकारी अपने लिये एक विशेष मन वांछित कार्य चुन लेता है और सावधानी पूर्वक अन्य पदाधिकारियों को वह काम करने नहीं देता। जहां अध्यक्षों तथा सचिवों को व्यक्तिगत रूप से काम करने के विशेष अवसर प्राप्त होते हैं, वहीं अन्य पदाधिकारियों के मामले में ऐसा नहीं होता। स्पष्ट है कि इस प्रकार की कामकाजी पद्धति से संगठन क्षति पहुंचती है। इससे कार्यकर्ता व्यक्तिगत प्रभाव का उपयोग करके काम करने का मार्ग चुन लेते हैं। इससे व्यक्ति ऊंचा उठता है, संगठन नहीं।

20. सामूहिक कार्य पद्धति में एक और विसंगती गुटबाजी के कारण जन्म लेती है। कार्यकर्ता कभी-कभार अपनी व्यक्तिगत महत्वकांक्षाओं के चलते एकजुट हो जाते हैं और उन्हें पूर्ण करने के लिये काम करने लगते हैं। प्राय: भोले भाले साथी भी इसी गुटबाजी में धकेल दिये जाते हैं। यह भी स्पष्ट है कि गुटबाजी व्यक्तिगत कार्य पद्धति से भी अधिक संगठन का अहित करती है।

21. किसी भी संगठन की जनवादी कार्य पद्धति पूर्ण रूप से इस बात पर निर्भर करती है कि नेतृत्वकारी दल कितने प्रभावशाली ढंग से काम करता है। सामूहिक नेतृत्व अत्यंत दुर्लभ होता चला जा रहा है। इसके अभाव में संगठन में जनवादी कार्य पद्धति का विकास का मार्ग विशाल स्तर पर अवरुद्ध हो जाता है।

22. द्वितीय पक्ष में साथ सम्बन्धित विपथगमन की उद्धरणों की सूची हम अपने दस्तावेजों में दे चुके हैं। उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि हम उन कारणों पर विचार करें कि संगठनात्मक रिपोर्ट पारित होने के चार वर्ष पश्चात् भी उसे व्यवहार में क्यों नहीं लाया जा सका।

प्रतिकूल विचारधारा का प्रभाव

23. सभी प्रकार के भटकाव एवं विपथगमन मूल रूप से प्रतिकूल वर्गीय विचारधारा के प्रभाव में निहित है, यह प्रतिकूल विचारधारा शोषक वर्ग, सामंत तथा पूंजीपति वर्गों की विचारधारा ही हो सकती है। हमारे देश में आधुनिक उद्योग की मंद प्रगति हुई है और सामंती एवं अर्ध-सामंती सम्बंध निरंतर बने रहे हैं, सामंतवादी विचारधारा का प्रभाव अत्यंत व्यापक है। पूंजीवादी व्यक्तिवाद के साथ-साथ सत्ता की सामंती प्रवृति ने हमारी मानसिकता का निर्माण किया है और ऊपर से सुधारवादी रुझानों ने हमारा पोषण किया है।

24. यूनियन में साधारण सदस्य तथा सामान्य श्रमिकों की उपेक्षा करने की भावना हमारे अंदर सुधारवादी प्रभावों के चलते गहराई तक समाई हुई है। हमारे यूनियन के नेताओं में विकासशील प्रक्रिया के रूप में वर्ग संघर्ष की अवधारणा और उसके साथ-साथ सम्पूर्ण श्रमिक वर्ग की जागरूक सक्रिय सहभागिता जैसी भावनाओं (अथवा मानसिकता) का नितांत अभाव सा है, अधिकांश मामलों में तो ऐसी भावना पाई ही नहीं जाती। इसलिये हम श्रमजीवी जनता के प्रति इस प्रकार का रुख अपनाते हैं जो सुधारवादी नेताओं के रुख से अलग नहीं होता। एक अत्यंत घिनावनी बात जिसकी ओर कामरेड बी टी रणदिवे ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया था, वह यह है कि श्रमिक गण भी किसी नेता द्वारा अलोकतांत्रिक ढंग से काम करने पर अपना विरोध व्यक्त नहीं करते। वे इसे सामान्य सी बात मानते हैं, यूनियन का काम करना नेताओं का ही दायित्व है। इससे हमें उस खाई की गहराई का अनुमान हो जाता है जिसकी सुधारवादी जागरूकता की दलदल में हम धंसते ही चले जा रहे हैं।

25. हमारे अधिकांश नेताओं का मूल रूप से श्रमिक वर्ग के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, उनमें से अधिकांश स्वयं कभी न श्रमिक थे और न हैं। वे नेता भी जो श्रमिक हैं, अधिकांशतया पहली पीढ़ी के श्रमिक हैं जो विरोधी वर्गों की विचारधारा का पूर्णतया परित्याग किये बिना ही श्रमिक वर्ग की पंक्तियों में सम्मिलित हो गए थे: कुछेक नेताओं का कुछ न कुछ सैद्धांतिक आधार है और कुछेक के पास ऊंची डिग्री है और वे एक वर्ग के रूप में श्रमिकों की ऐतिहासिक भूमिका से जागरूक हैं, सम्पूर्ण वर्ग को एकजुट करने में उनके काम का महत्व तो है किन्तु उनका ज्ञान उनके अन्तर-तम की गहराइयों तक नहीं जाता जिससे उनमें मूलभूत परिवर्तन आ सके।

26. हम अपनी बात को एक बार पुन: दोहराएंगे, हमारे यहां ऐसे साथी भी हैं जो सामूहिक कार्य पद्धति पर लम्बा-चौड़ा भाषण दे सकते हैं किन्तु उनकी मानसिकता वैसी नहीं होती और उनके लिये अपनी व्यक्तिगत भूमिका ही सर्वोच्च महत्व रखती है। व्यक्तिवाद की इसी विचारधारा के कारण ही वे न केवल साधारण श्रमिकों की उपेक्षा करते हैं अपितु समितियों में अपने सहयोगी सदस्यों, सचिव मंडल में अपने सहयोगियों का भी दृष्टिलोप कर देते हैं, समिति तथा परिषदों की नियमित बैठकों में भी वे लापरवाही से काम लेते हैं। और यह बात

केवल प्रमुख नेताओं पर ही लागू नहीं होती, अन्य लोगों का प्रत्युत्तर भी प्राय: उसी विचारधारा से निर्धारित होता है और वह वैसा ही हो सकता है।

हमारे कार्य

27. यदि यह मूल कारण है तो इसका निदान हमारी जागरूकता को बदलने से ही संभव हो सकता है। यह, निश्चित रूप से कुछ दिनों अथवा महीनों में पूर्ण कर लिया जाने वाला कार्य नहीं है। विचारधारात्मक परिष्कार तथा आत्म परिष्कार प्रतिकूल विचारधारा के उन्मूलन और जागरूकता एवं मानसिकता में पूर्ण परिवर्तन के लिये अत्यावश्यक है। शिक्षा श्रमिक संघों की नियमित गतिविधियों का एक नियमित भाग होनी चाहिये किन्तु प्रतिदिन की शिक्षा से इन काम में अधिक सहायता नहीं मिलती। हमें इस उद्देश्य के लिये विशेष रूप से बनाई गई शैक्षणिक पद्धति पर विचार करना चाहिये। समितियों में ईमानदारी से आलोचना करना तथा आत्म आलोचना अत्यंत लाभदायक होती है। यह एक कठिन कार्य है।

28. कुछ नियमों का यंत्रवत पालन करने से ही ट्रेड यूनियन जनवाद नहीं आ जाता और न ही वह इस प्रकार के नियमों पर आधारित होता है। जागरूकता का परिष्कार किये बिना यह जनवाद आ ही नहीं सकता। तथापि ये नियम जनवादी कार्य पद्धति के सिद्धांतों पर आधारित होते हैं, इसलिये इनका अत्याधिक महत्व है। गलत विचारों की ठोस अभिव्यक्ति हमारे संगठनात्मक कार्यों के माध्यम से होती है। गलत विचारों के शुद्धिकरण का कार्य संगठनात्मक रूप किया जाना चाहिये। हमारे दस्तावेजों में इन भटकावों की ओर संकेत करते हुए, ठोस रूप से वे नियम बनाए गए हैं जिनका पालन किया जाना चाहिये। प्रत्येक नियम का गम्भीरतापूर्वक पालन किया जाए, इसके लिये हर संभव प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। उच्च स्तरीय समितियों पर इसे सुनिश्चित बनाने का अधिक दायित्व आता है।

29. किन्तु उच्चतर समितियों को सर्वप्रथम स्वयं अपना सुधार करना होगा और उसके पश्चात् वही कार्य करने के लिये उन्हें अधीनस्थ समितियों की सहायता करनी होगी। इस सम्बन्ध में सभी स्तरों पर जिसमें केंद्र भी सम्मिलित हैं, हमारी विफलता एक समान है। केंद्र स्वयं प्रतिकूल वर्गीय विचारधारा के प्रभाव को निकाल बाहर करने के लिये शिक्षा की प्रभावी व्यवस्था लागू करने में विफल रहा है। इसके अतिरिक्त उसकी विफलता स्वयं अपने कामों में वांछित स्तर तक सामूहिकता की भावना विकसित करने के मामले में भी है वह जनवादी कार्य पद्धति को सुनिश्चित बनाने के लिये सांगठनिक रिपोर्ट को लागू करने के लिये निरीक्षण को प्रभावी प्रबंध करने में भी अब तक विफल रहा है। केंद्र के दृढ़ एवं जोरदार हस्तक्षेप के बिना जनवादी नियमों में व्याप्त विसंगतियों को दूर करने की अपेक्षा करना सिद्धांत तथा व्यवहार दोनों दृष्टियों से गलत है, यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिये।

30. तथापि इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि वर्ग संघर्ष के तीव्र होने से स्वयंमेव ऐसा

वातावरण बन जाएगा जो विसंगतियों एवं दुर्बलताओं को दूर करने के मामले में अत्यंत अनुकूल होगा।

31. जनवादी कार्य पद्धति का वर्तमान उपयोग नया नहीं है। यह अपने संगठन को कारगर बनाने के लिये हमारा निरंतर प्रयास ही है। यह कार्य संगठनात्मक रिपोर्ट पारित होने के समय से ही शुरू हो गया था। वास्तव में हमारी अधिकांश सांगठनिक दुर्बलताओं एवं कमियों जिनका वर्णन रिपोर्ट में किया गया है, जनवादी कार्य पद्धति के अभाव में ही उत्पन्न हुई हैं। यह एक गम्भीर कमी है। इसके लिये सभी स्तरों का नेतृत्व ही उत्तरदायी है। रिपोर्ट में निर्शिष्ट सामूहिक कदमों को शायद ही लागू किया गया हो। उन्हें लागू करने के लिये हमें दृढ़ प्रतिज्ञ होकर नये सिरे से निरंतर प्रयास करने होंगे।

32. यद्यपि संगठनात्मक रिपोर्ट में पर्याप्त विस्तार के साथ सुधारात्मक कदमों का वर्णन किया गया है। अनेक बिंदु जो यहां उद्धत किये गए हैं, को लागू करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।

- संविधान में संशोधन किये जाने की आवश्यकता है। उसमें जनवादी कार्य पद्धति से सम्बन्धित अनेक प्रावधान जोड़े जाने चाहियें।
- केन्द्र को जनवादी कार्य पद्धति की ओर विशेष ध्यान देते हुए संगठनात्मक रिपोर्ट के कार्यान्वयन के लिये विशेष अभियान चलाना होगा। और उसे चरणबद्ध ढंग से कार्यरूप देने के लिये कार्यक्रम बनाना होगा। इसकी प्रगति पर दृष्टि रखने के लिये पक्के प्रबंध करने होंगे।
- जनरल बाडी बैठकें नियमित रूप से आयोजित की जाएं और उनमें साधारण सदस्यों तथा गैर सदस्यों की अधिक से अधिक उपस्थिति सुनिश्चित बनाई जाए। बैठक में भाग लेने वाले सदस्यों को अपने विचार व्यक्त करने के लिये पूरा अवसर दिया जाए।
- गुप्त मतदान द्वारा यूनियन के चुनाव कराने के संविधानिक प्रावधानों की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। सांगठनिक दस्तावेजों में संचित मतदान और अन्य प्रावधान किये गए हैं। चुनाव प्रक्रिया बाहरी तत्वों के दबाव से पूर्णतया मुक्त हो, इसका विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिये।
- केन्द्र द्वारा कार्यकर्ताओं की शिक्षा तथा प्रशिक्षण के लिये विशेष कार्यक्रम बनाया जाना चाहिये ताकि कार्यकर्ताओं पर प्रतिकूल विचारधारा का प्रभाव नहीं पड़े और उनका विकास किया जा सके।
- एक नेता द्वारा अनेकानेक श्रमिक संघों के दायित्व का बोझ अपने कंधों पर उठाने की परिपाटी तत्काल समाप्त की जाए।

33. तथापि, हमें स्मरण रखना होगा कि कोई भी संवैधानिक प्रावधान तथा नियम अपने

में महत्वपूर्ण नहीं होता; यद्यपि वह महत्वपूर्ण तो होता है, किन्तु वह उस समय तक जनवादी कार्य पद्धति को सुनिश्चित नहीं बना सकता जब तक हमारे अपने भीतर जनवादी भावना का विकास नहीं होता। यही भावना हमारे अंतिम लक्ष्य को प्रतिबिम्बित कर सकती है। नेताओं तथा कार्यकर्ताओं के लिये आवश्यक है कि वे प्रत्येक स्थिति में संगठन के हितों को प्राथमिकता दें और अपने हितों को गौण रखें। जनवादी कार्य पद्धति की यही मूल पूर्व शर्त है।

34. हमें सावधानी से काम लेना होगा। यद्यपि हमारे पिछले दस्तावेजों में हमारी संगठनात्मक कमियों, दुर्बलताओं तथा असफलताओं को अनावृत करने में सख्ती से काम लिया गया है, वर्तमान दस्तावेज में भी ऐसा ही किया गया है तथापि हम एक क्षण के लिये भी इस तथ्य को भुला नहीं सकते कि ये सब दुर्बलताएं होने पर भी, सी आइ टी यू के जन्म से ही हमने अपने देश में श्रमिक आंदोलन में ऐतिहासिक महत्व की भूमिका निभाई है और अब तक हम ऐसी भूमिका निभा रहे हैं। सी आइ टी यू भिन्न-भिन्न विचारधाराएं रखने वाले अधिकांश श्रमिक संगठनों को शोषक वर्गों के हमलों के प्रतिकार हेतु सांझे संघर्षों में खींच लाने में सफल रहा है। किन्तु क्या अब कुछ और करना शेष नहीं रहा। हमें अभी बहुत कुछ करना है। हमारा संगठन ही हमारा शस्त्र है। हम अपने इस शस्त्र की दुर्बलताओं के विषय में जागरूक हो गए हैं, यह एक अच्छी बात है और हमने पहले ही अपनी दुर्बलताओं का पता लगाने के लिये लम्बे समय तक कठोर कार्य किया है और हमने इन पर काबू पाने के ढंगों एवं साधनों का पता लगाया है। यदि हम सदा अपने उन कर्त्तव्यों का स्मरण करते रहे जिनका दायित्व इतिहास ने हमारे कंधों पर डाला है, यदि श्रमिकों की विशाल संख्या के साथ अपने सम्बंधों में दूरी न आने दें और निरंतर अपनी कमियों एवं दुर्बलताओं को दूर करने के लिये प्रयास करते रहें तो हम निश्चित रूप से अपने ऐतिहासिक दायित्वों को पूर्ण करने में सक्षम हो सकेंगे।

न्यूनतम वेतन नीति

1. भारत सरकार ने देश में रोजगार के विभिन्न केंद्रों के कर्मचारियों तथा श्रमिकों के लिये कोई वेतन नीति नहीं बनाई है। इसलिए वेतन में उच्चतर संशोधन, कर्मचारियों की विभिन्न श्रेणियों में वेतन समानता, निर्वाह व्यय का निष्प्रभावन तथा राष्ट्रीय स्तर पर न्यूनतम वेतन निर्धारित करने जैसे मामले केंद्रीय सरकार, राज्य सरकारों, सार्वजनकि क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र में रोजगार की विभिन्न श्रेणियों में कार्यरत कर्मचारियों तथा श्रमिकों के संघर्ष के मुख्य लक्षण हैं।

2. क ोई वेतन नीति नहीं होने के कारण असंगठित क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों की विशाल संख्या सर्वाधिक पीड़ित हो रही है। ये श्रमिक भारत की कुल श्रम शक्ति का 92 प्रतिशत से भी अधिक है। बार-बार मांग किये जाने पर भी सरकार ने न्यूनतम वेतन का निर्धारण करने की कोई कसौटी नहीं बनाई है। इसलिए न्यूनतम वेतन की राशि राज्य दर, राज्य उद्योग दर उद्योग तथा एक ही राज्य एवं एक ही उद्योग में अलग-अलग है। असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों को मिलने वाले न्यूनतम वेतन गरीबी की रेखा से भी नीचे हैं। सभी उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्यों मे निर्बाध वृद्धि के चलते उनकी स्थितियां और भी बिगड़ चुकी हैं और उनके वास्तविक वेतन कम हो रहे हैं। कामकाजी महिलाओं की स्थिति तो बहुत ही खराब है क्योंकि उन्हें उनके पुरुष सहायोगियों के समान भी वेतन नहीं दिये जाते।

नयी आर्थिक नीति का प्रभाव

3. तथापि न्यूनतम वेतन के मुद्दे पर भारत सरकार द्वारा अपनाई गई नयी आर्थिक एवं औद्योगिक नीति तथा संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम के प्रभावों की पृष्ठभूमि में विचार किया जाना चाहिए।

4. संगठित तथा असंगठित दोनों क्षेत्रों में श्रमिकों की सघनता वाली लघु एवं नन्हीं औद्योगिक इकाइयों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से सरकार ने वष्र 1967 से उत्पादन हेतु

आइटमों को उनके लिये आरक्षित करना शुरू कर दिया था। इसका एक और उद्देश्य था उनमें बड़े इजारेदार घरानों का अनुप्रवेश रोकना तथा रोजगार का सर्जन। आरक्षित आइटमों की सूची उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई। वर्ष 1991 में यह 47 उद्योगों से बढ़कर 836 तक पहुंच गई। लघु उद्योग भारती द्वारा दिये गए आंकड़ों के अनुसार देश में लगभग 27 लाख उद्योगों की लघु इकाईयां हैं, उनमें लगभग 3,75,000 करोड़ रुपये मूल्य के उत्पाद तैयार होते हैं और उनमें लगभग अढ़ाई करोड़ श्रमिक काम करते हैं। ये इकाईयां देश के औद्योगिक उत्पादन में 40 प्रतिशत भाग का योगदान देती हैं। इन इकाईयों से वर्ष 1971-72 के 9.6 प्रतिशत की तुलना में वर्ष 1994-95 में 35 प्रतिशत उत्पादों का निर्यात हुआ।

5. तथापि बढ़ते इजारेदारीकरण के चलते उद्योगों की लघु एवं नकदी इकाईयों जिनके संयंत्रों तथा मशीनरी पर 2 लाख रुपये से भी कम धन का निवेश हुआ है, और जो 1987-88 में एस एस आइ की गणना के अनुसार सभी एस एस आइ इकाईयों को 83 प्रतिशत बनती है, और जो श्रमिकों की अधिक सघनता वाली हैं, अन्य एफ एफ आइ इकाईयों की अपेक्षा अधिक रोजगार उपलब्ध कराती हैं।

5. उपरोक्त परिस्थितियों के चलते नन्हीं इकाईयों में कार्यरत श्रमिक घोर दरिद्रता जैसी स्थिति में धकेले जा चुके हैं। अन्य लघु इकाईयों में कार्यरत श्रमिकों के वेतन भी गरीबी की रेखा से नीचे हैं। इसलिए इन विशाल क्षेत्रों में न्यूनतम वेतन का प्रश्न एक ज्वलंत प्रश्न बन चुका है।

7. तथापि वर्ष 1991 की औद्योगिक नीति के अन्तर्गत लघु तथा नन्हीं इकाईयों के इन दोनों औद्योगिक क्षेत्रों के कपाट न केवल भारतीय इजारेदारों अपितु विदेशी बहुर्राष्ट्रीय निगमों के लिये भी खोल दिये गए हैं। इस नीति पर चलते हुए सरकार धीरे-धीरे आरक्षित आइटमों के आरक्षण को समाप्त करना शुरू कर दिया है। नरसिम्हा राव सरकार ने लघु इकाईयों के लिये पूंजी निवेश की सीमा 40 लाख से बढ़ कर 60 लाख कर दी थी।

8. "संरक्षण से बढ़ावा देने तक" के बहुराष्ट्रीय निगमों के उपदेशों का अनुसरण करते हुए नरसिम्हा राव सरकार ने 1991 की औद्योगिक नीति को लागू करने के लिये उदारीकरण की नीति के अन्तर्गत आबिद हुसैन समिति का गठन किया। उस समिति से कहा गया कि वह लघु तथा नन्हीं इकाइयों में औद्योगिक नीति को लागू करने के संबध में ठोस उपायों का सुझाव दे। आबिद हुसैन समिति ने अपनी पैशाचिक रिपोर्ट (छोटे उद्यम-नयी नीति के दिशा निदेश) जो जनवरी 1997 में संयुक्त मोर्चा सरकार की सत्ता के समय प्रस्तुत की गई, आरक्षित आइटमों का आरक्षण तथा लघु एवं नन्हीं इकाइयों के लिए विदेशी एक्विटी की सीमा पूर्णतया समाप्त कर देने की संस्तुति (सिफारिश की) दी। पहले कदम के रूप में आरक्षित आइटमों की सूची में और कांट-छांट की गई तथा अंतिम बजट ने संयंत्र तथा मशीनरी में निवेशित धन की सीमा पांच गुणा बढ़ा दी गई अर्थात् उसे 60 लाख रुपये से बढ़ाकर 3 करोड़ कर

दिया गया। वर्ष 1991 के पश्चात् उद्योगों की लाखों लघु इकाइयां बंद हो गई जिसके चलते श्रमिकों की भारी संख्या बेरोजगार हो गई।

संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम तथा श्रमिकों का संयोजन

9. उदारीकरण, निजीकरण तथा भूमंडलीयकरण के दर्शन का व्यावहारिक स्वरूप संरचनात्मक समायोजन कार्याक्रम (एस ए पी) के द्वारा उसे लागू किये जाने की प्रक्रिया में देखा जा सकता है। सर्वप्रथम, संगठित सार्वजनिक क्षेत्र को धीरे-धीरे विखंडित किया जा रहा है और निजीकरण की दिशा में कदम बढ़ाने के उद्देश्य से सार्वजनिक क्षेत्र तथा अन्य सरकारी रोजगारों में सेवाओं का संविदाकरण किया जाने लगा है (अर्थात् स्थायी कर्मचारियों के स्थान पर ठेका (संविदा) श्रमिकों को काम पर रखना)। श्रमिकों को रोजगार के लिए असंगठित क्षेत्र जहां पहले ही श्रमिकों की भारी धक्कम पेल हो रही है, में धकेला जा रहा है। दूसरे संगठित निजी क्षेत्र की भी सिकोड़ा जा रहा है और उसके श्रमिकों को भी असंगठित क्षेत्र में दर-दर की ठोकरें खाने के लिये छोड़ा जा रहा है। संगठित क्षेत्र में उत्पादित उत्पादों का उत्पादन अब असंगठित क्षेत्र तथा गृह आधारित औद्योगिक इकाइयों में किया जा रहा है और इन इकाइयों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। इजारेदार उद्योगपति कम कामकाजी पूंजी लगातार तथा अल्प वेतन देकर श्रमिकों का हृदयहीन शोषण करके भारी भरकम लाभ अर्जित कर रहे हैं। गृह आधारित उद्योग धंधों में तो श्रमिकों का शोषण और भी हृदयहीनता के साथ किया जाता है। इन उद्योग धंधों में कार्यरत श्रमिकों में भारी संख्या विशेष रूप से कामकाजी महिलाओं तथा बाल श्रमिकों की होती है। उन्हें उनके पुरुष सहयोगियों की तुलना में अत्यंत अल्प वेतन दिये जाते हैं।

10. असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों का संयोजन भी इस प्रकार के संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम के साथ-साथ साथ-साथ परिवर्तित हो रहा है। क्योंकि संगठित क्षेत्र से श्रमिकों को निकाल बाहर किये जाने के कारण असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों की भीड़ बढ़ रही है, उनमें भारी संख्या कुशल तथा अत्यंत कुशल श्रमिकों की है, इसलिये इस उदीयमान क्षेत्र में न्यूनतम वेतन का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण बनता चला जा रहा है।

11. संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम श्रम बाजार को विनियमित करने की नीति के अन्तर्गत शुरू किया गया था। इसके चलते नियमों तथा परिनियमों को लागू नहीं करने के रुख को बढ़ावा मिला, निरीक्षण कार्य बंद प्राय: हो गया और केंद्र तथा विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा बनाए गए न्यूनतम वेतन सम्बन्धी कानूनों की धार भी कुंद की जा रही है। कानून लागू करने वाले प्राधिकरण न्यूनतम वेतन सम्बन्धी वर्तमान कानूनों को लागू करने के प्रति चिंतित

नहीं हैं। गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले श्रमिकों के मामले में अधिकतर ऐसा होता है।

12. एस ए पी ने एक और विनाशक रुझान को बढ़ावा दिया है। भारत सरकार द्वारा विदेशी पूंजी तथा इजारेदार गृहों को लुभाने के लिये अपनाई गई नीति के अन्तर्गत विभिन्न राज्य सरकारों ने इस मामले में एक दूसरी के साथ होड़ लेना शुरू कर दिया है। वे राज्य में पूंजी निवेश को आकृष्ट करने के लिये विदेशी तथा स्वदेशी निजी पूंजी को घोषित एवं अघोषित सुविधाएं प्रदान कर रहे हैं। इसके चलते न्यूनतम वेतन का स्तर नीचे गिरा है और दीर्घावधि से उसमें संशोधन नहीं किया गया। जैसा कि अंकटाड रिपोर्ट में कहा गया है राज्यों/क्षेत्रों में निवेश के लिये निजी पूँजी को आकृष्ठ करने के लिए केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार के मध्य चल रही प्रतिस्पर्धा का परिणाम "नीचे की ओर दौड़" तथा श्रम मानकों में गिरावट के रूप में निकला है। "नीचे की ओर दौड़" की इस संवृति का सर्वाधिक दुष्प्रभाव न्यूनतम वेतन लागू करने के वर्तमान कानूनों पर पड़ा है।

आइ एल ओ कन्वेंशनें

13. भारत सरकार ने आइ एल ओ की अनेक कन्वेंशनों की पुष्टि तक नहीं की है। ये कन्वेंशनें उद्योग के असंगठित क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों के साथ संबंध रखती हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण कन्वेंशन न्यूनतम वेतन पर 1970 की कन्वेंशन संख्या 131 है। कन्वेंशन संख्या 131 सदस्य देशों से अनुरोध करती है कि वे निर्वाह व्यय के अनुरूप आवश्यकताओं के अनुसार न्यूनतम वेतन का निधारण करने के लिये कसौटी निश्चित करें अथवा व्यवस्था बनाएं। वह सभी रोजगारों में न्यूनतम वेतन के प्रावधान का विस्तार करने का अनुरोध करती है। वह सदस्य देशों से उन रोजगारों की सूची प्रस्तुत करने का अनुरोध भी करती है जिनहें कुछ ठोस कारणों के चलते न्यूनतम वेतन के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता। रोजगारों की भारी संख्या न्यूनतम वेतन "नियमों" के अन्तर्गत आती ही नहीं है। कन्वेंशन संख्या 26 न्यूनतम वेतन का निर्धारण करने वाले तंत्र का गठन करने का अनुरोध करती है। सरकार ने न्यूनतम वेतन कसौटी निश्चित करने के लिये एक केंद्रीय न्यूनतम वेतन परामर्शदाता बोर्ड का गठन किया था। किन्तु बोर्ड ने किसी कसौटी का निर्धारण नहीं किया।सामाजिक सुरक्षा उपायों तथा श्रम कानूनों को लागू करने संबंधी आइ एल ओ कन्वेंशन की अवहेलना की जा रही है। उपरोक्त कन्वेंशनों के अतिरिक्त न्यूनतम वेतन पर तथा असंगठित क्षेत्र के विभिन्न श्रेणियों की कामकाजी तथा सेवा स्थितियों पर भी आइ एल ओ की अनेक कन्वेंशनें हैं जिनकी सरकार ने या तो पुष्टि ही नहीं की है और या उन्हें लागू करने से ही इंकार कर दिया है। श्रमिकों की इन श्रेणियों में कामकाजी महिलाएं, बाल श्रमिक, प्रवासी श्रमिक, संविदा (ठेका) श्रमिक, खेत मजदूर इत्यादि आ जाते हैं।

आवश्यकता पर आधारित वेतन

14. आवश्यकता पर आधारित वेतन की अवधारणा जिसकी व्याख्या वर्ष 1957 में आयोजित 15वें भारतीय श्रम सम्मेलन ने की है, भारत के श्रमिक वर्ग द्वारा अच्छे जीवन स्तर के लिये किये गए शानदार संघर्ष के फलस्वरूप अस्तित्व में आई थी। क्योंकि न्यूनतम वेतन अधिनियम 1948 की परिकल्पना ब्रिटिश सत्ता के समय की गई थी, इसलिये उसमें अनेक कमियां विद्यमान हैं। वर्ष 1957 में आइ एल ओ के 15वें सत्र ने न्यूनतम वेतनों का निर्धारण करने के लिये अधोलिखित कसौटी बनाई थी:

1. श्रमिकों तथा उनके परिवारों की न्यूनतम मानवीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए न्यूनतम वेतन आवश्यकता पर आधारित होने चाहिएं।

2. श्रमिक वर्ग का एक मानक परिवार तीन उपभोगी इकाईयों पर आधारित होना चाहिए जिसमें केवल एक सदस्य ही कमाने वाला हो। उस परिवार में चार सदस्य भी हो सकते है– एक स्यवं, दूसरी पत्नी तथा दो बच्चे।

3. प्रत्येक व्यस्क सदस्य की खाद्य आवश्यकता 2700 कैलोरीज प्रतिदिन मानी जाए।

4. चार सदस्यों पर आधारित प्रत्येक परिवार में कपड़े की न्यूनतम आवश्यकता 77 गज वार्षिक हो।

5. आवास के लिये एक श्रमिक के खर्चे का आंकलन सरकार द्वारा औद्योगिक आवास योजना के अंतर्गत सब्सिडी वाले सरकारी मकानों के लिये जा रहे न्यूनतम मकान किराए के आधार पर की जानी चाहिए।

6. ईंधन, प्रकाश इत्यादि फुटकल वस्तुओं पर श्रमिक के खर्च का आंकलन कुल न्यूनतम वेतन के 20 प्रतिशत की दर पर किया जाए।

16. तीन सदस्यों वाली एक पारिवारिक इकाई के लिये निर्धारित नियम तथापि यथार्थपरक नहीं है क्योंकि समग्र परिवार कम से कम पांच सदस्यों पर आधारित होता है। आइ एल सी के 15वें सत्र ने आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम वेतन की आवधारणा के लिए केवल 15 उद्योगों को ही लिया था। इसका विस्तार करके सभी उद्योगों को इस गणना में शामिल किया जाना चाहिए।

17. 1991 में रेपटाकोस ब्रेक एण्ड कम्पनी लिमिटेड (1991 की अपील संख्या 4,336, अक्टूबर, 1991) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया था कि–

18. "न्यूनतम वेतन" की अपधारणा अब वह नहीं रही जो वर्ष 1936 में थी। यहां तक कि 1957 तो बहुत बाद की बात है...वेतन संरचना की प्रत्येक श्रेणी को सामाजिक न्याय दिया जाना चाहिए जो वर्तमान में हमारे समाज की एक जीवंत कड़ी है। वेतन संरचना के

सामाजिक-आर्थिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए हम विचार व्यक्त करते हैं कि उद्योग में न्यूनतम वेतन निर्धारित करने के लिए मार्ग दर्शक के रूप में अधोलिखित अतिरिक्त अवयवों को जोड़ना आवश्यक है।

19. बच्चों की शिक्षा, चिकित्सकीय आवश्यकताएं, उत्सवों समारोहों जैसे मनबहलाव के न्यूनतम साधन वृद्धावस्था का प्रावधान, विवाह इत्यादि कुल न्यूनतम वेतन के 25 प्रतिशत पर आधारित हैं।"

20. बहुत समय पूर्व उच्चतम न्यायालय ने अपने एक पहले निर्णय में क्षमता न होने के संबंध में नियोजकों की दुहाई को रद्द कर दिया था। उसने कहा था कि न्यूनतम वेतन का निर्णय करते समय भुगतान क्षमता के तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

21. किन्तु 1957 में आयोजित 15वें श्रम सम्मेलन के 40 वर्षों के पश्चात् भी उपरोक्त लक्ष्य प्राप्त करना अभी दूर की बात ही प्रतीत होती है। सरकार तथा नियोजकों ने इसकी पूर्णतया उपेक्षा कर दी और वे आइ एल सी के 15वें सत्र के निर्णयों की धज्जियां उड़ा रहे हैं।

न्यूनतम वेतन अधिनियम, 1948

22. श्रमिकों द्वारा कठोर संघर्ष करने के फलस्वरूप न्यूनतम वेतन अधिनियम बनाया गया था। तथापि न्यूनतम वेतन निर्धारित करने की कोई कसौटी न होने के कारण यह अधिनियम असंगठित क्षेत्र के खून-पसीना एक करके काम करने वाले श्रमिकों जो नियोजकों के शोषण से बचने के लिये सौदेबाजी करने की शक्ति नहीं रखते, को कोई राहत देने में सफल नहीं हो सका। यही नहीं, भारी संख्या में रोजगार इस अधिनियम के अंतर्गत नहीं आते और सरकार ने मनमाने ढंग से जो न्यूनतम वेतन निर्धारित किये हैं, वे भी श्रमिकों को दिये नहीं जाते। और निर्धारित किये गये न्यूनतम वेतन गरीबी की रेखा के नीचे हैं और कर्मचारी इतने अल्प वेतन निर्धारित किये जाने के विरुद्ध अदालत में गए हैं। अनेक राज्यों में निर्धारित न्यूनतम वेतन मूल्य सूचक अंक के साथ जोड़े नहीं गए। इसलिये श्रमिकों के वास्तविक वेतन कम हो रहे हैं। इनमें क्षेत्रीय समानता भी नहीं है। इसके फलस्वरूप उद्योग एक राज्य से कम न्यूनतम वेतन वाले राज्य में स्थानांतरित हो रहे हैं, इसके चलते एक राज्य में बेरोजगारी फैलती है और दूसरे राज्य में अल्प वेतन देकर श्रमिकों का शोषण किया जाता है। असंगठित क्षेत्र में न्यूनतम वेतन के मामले में पूर्ण अराजक स्थिति पाई जा रही है।

23. जहां तक खेत मजदूरों का संबंध है, उनकी स्थिति अभी भी अत्यंत खराब है। श्रमिक संघों तथा खेतमजदूरों की ओर से निरंतर मांग किये जाने पर भी सरकार ने खेत मजदूरों के न्यूनतम वेतन की रक्षा के लिये केंद्रीय कानून नहीं बनाया है।

न्यूनतम वेतन अधिनियम, 1948 के अंतर्गत आने वाले कर्मचारियों के लिये मानक

वेतन संरचना बनाने के लिये कोई भी प्रयास करने से पूर्व 15वें श्रम सम्मेलन में हुई बहस तथा शीर्ष अदालत के उपरोक्त निर्णय पर भी विचार कर लेना चाहिये। इस अधिनियम के अंतर्गत केंद्रीय तथा राज्य दोनों ही क्षेत्रों के सभी रोजगारों को लाया जाना चाहिये। न्यूनतम वेतन को मूल्य सूचकांक के साथ जोड़ना चाहिये तथा प्रत्येक छह मास के पश्चात् इसमें संशोधन किया जाए अथवा उपभोक्ता मूल्य सूचक अंक के 50 बिन्दुओं जो भी पहले हों, की वृद्धि की जाए। अधिनियम में उसके अनुसार संशोधन किया जाए तथा उसे संविधान की नौंवी अनुसूचि में सम्मिलित किया जाए ताकि नियोजक इसके विरुद्ध अदालत का द्वार न खटखटा सकें।

24. आवश्यकता पर आधारित वेतन के मामले पर 15वें आइ एल सी नियमों के अनुसार विचार नहीं किया गया। यहां तक कि 15वें आइ एल सी के पश्चात् विभिन्न वेतन बोड़ों का गठन भी किया जा चुका है। सभी श्रमिक संगठनों द्वारा लगभग सभी भारतीय श्रम सम्मेलनों, स्थायी श्रम समिति की बैठकों तथा अब समाप्त हो चुके केंद्रीय न्यूनतम वेतन परामर्शदात्री बोर्ड जिसे न्यूनतम वेतन निर्धारित करने की कसौटी बनाने के लिये, आइ एल ओ नियमों के अनुसार गठित किया गया था, बराबर मांग करने पर, इस प्रश्न पर विचार किया गया।

25. राज्यों के श्रम मंत्रियों की बैठकों तथा क्षेत्रीय श्रम मंत्रियों की बैठकों में इस मुद्दे पर बार बार विचार किया गया है। ये बैठकें केंद्रीय श्रम मंत्री द्वारा समय-समय पर बुलाई जाती रही है।

26. किन्तु ये सब विचार विमर्श होने पर भी सरकार ने अभी तक 15वें आइ एल सी नियमों को लागू नहीं किया है और न ही उसने उच्चम न्यायालय के निर्णय का सम्मान किया है और न ही राष्ट्रीय स्तर पर न्यूनतम वेतन निर्धारित करने के लिये कोई निर्णय लिया है। अत: सम्पूर्ण असंगठित क्षेत्र में पूर्ण अराजक स्थिति पाई जा रही है। केंद्र तथा राज्य दोनों क्षेत्रों में ऐसी ही स्थिति बनी हुई है।

निचले स्तर के न्यूनतम वेतन

27. निचले स्तर के न्यूनतम वेतन के संबंध में सरकार की अवधारणा के अनुसार उसके नीचे और कोई न्यूनतम वेतन नहीं होने चाहिये और ये वेतन गरीबी की रेखा के नीचे भी नहीं होनी चाहिए। किन्तु सरकार की ओर से घोषणाएं किये जाने पर भी निचले स्तर के न्यूनतम वेतन गरीबी की रेखा के नीचे बने हुए हैं। योजना आयोग के अनुसार (आठवीं पंचवर्षीय योजना) गरीबी की रेखा 1991-92 के मूल्यों के अनुसार समायोजित की गई है और ये मूल्य ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों के लिये क्रमवार 11,060 रुपये तथा 11,850 रुपये हैं। योजना आयोग द्वारा किये गये परिवार के आकार के लेखे के दृष्टिगत 5.08 ग्रामीण क्षेत्रों

में तथा 4.71 शहरी क्षेत्रों में है, अत: गरीबी की रेखा ग्रामीण क्षेत्रों के लिये 35 रुपये प्रति दिन (अनुमानित) तथा शहरी क्षेत्रों के लिये 39 रुपये (अनुमानित) निश्चित की गई है।

28. उपरोक्त पृष्ठभूमि में आइ एल सी के 33वें सत्र ने 24-25 नवम्बर 1996 को इस मुद्दे पर एक बार पुन: विचार किया था। सभी केंद्रीय श्रमिक संगठनों ने, इस विषय पर एक समान विचार बनाने के लिये निर्णय लिया था कि वे निचले स्तर के न्यूनतम वेतन गरीबी की रेखा के ऊपर रखने की मांग करेंगे जो 1991 में आनुपातिक सूचक अंक (1960=100) उच्च न्यायालय के निर्णयानुसार 25 प्रतिशत अर्थात् 50 रुपये प्रति दिन था। सी आइ टी यू द्वारा आइ एल सी में यह मांग उठाई गई जिसका सभी केंद्रीय श्रमिक संगठनों ने समर्थन किया था। सरकार ने भी इस पर कोई आपत्ति नहीं की थी।

29. तथापि इस आइ एल सी में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका और यह सत्र सी आइ टी यू द्वारा विरोध व्यक्त करने के साथ समाप्त हो गया था। किन्तु सरकार ने उसके पश्चात् एक वक्तव्य जारी करके निचले स्तर का न्यूनतम वेतन 35 रुपये प्रति दिन निश्चित करने की घोषणा कर डाली। सी आइ टी यू, एटक तथा एम एम एस ने एक संयुक्त वक्तव्य जारी करके सरकार की इस घोषणा को रद्द कर दिया था।

30. उपरोक्त संदर्भ में असंगठित क्षेत्र की अखिल भारतीय समन्वय समिति ने भी अनेक बार इस मुद्दे पर विचार किया है। विशाखापट्टनम में 5-8 जनवरी, 1997 को संपन्न सी आइ टी यू महापरिषद (जनरल कौंसिल) की बैठक में भी इस मुद्दे पर विचार किया गया था।

31. जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है सभी श्रमिक संघों को राष्ट्रीय स्तर पर निचले स्तर के दैनिक न्यूनतम वेतन मांग करनी चाहिये जो अंतरिम वेतन के रूप में प्राप्त की जा सकती है। इसके साथ ही आवश्कयता पर आधारित वेतन के लिये अभियान को और आगे बढ़ाया जाना चाहिये। कुल दैनिक वेतन नीचे दी गई गणना के अनुसार लगभग 78.00 रुपये बनता है और निचले स्तर पर 50.00 रुपये के दैनिक वेतन की मांग की गई है।

31. (क) शहरी क्षेत्र में गरीबी की रेखा वाला वेतन सरकारी अनुमानों के अनुसार वर्ष 1991 के मूल्यों की दृष्टि से (आनुपातिक सूचकांक 1045)
- 1960=100 — 39.00 रुपये

(ख) उच्चतम न्यायालय के निर्णयादेश के अनुसार 25 प्रतिशत वृद्धि — 9.25 रुपये

कुल — 48.25 रुपये

(ग) 1996 में आनुपातिक सूचकांक (1960=100) — 1646 रुपये

(घ) कुल निचले स्तर का दैनिक

न्यूनतम वेतन 50.00 (गरीबी की रेखा से ऊपर)

$$\frac{1646 \times 50}{1045 \times 1} = 78.50$$

33. **वेतन अंतर**

इस तथ्य के दृष्टिगत कि असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों का संयोजन संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम के चलते परिवर्तित हो रहा है, अनेक कुशल तथा यहां तक कि अत्यंत कुशल श्रमिक भी इस क्षेत्र में आकर काम करने के लिये विवश हो गए हैं। इसलिये अकुशल, अर्द्धकुशल, कुशल तथा अत्यंत कुशल श्रमिकों के लिये वेतन में अधोलिखित अनुपात से अंतर रखने का सुझाव दिया जाता है। और अकुशल श्रमिकों के लिये निचले स्तर का न्यूनतम वेतन 78.00 रुपये होना चाहिये।

34. उपरोक्त श्रेणियों के लिये दैनिक न्यूनतम वेतन इस प्रकार होंगे:

अकुशल	78.00 रुपये
अर्ध कुशल	118.13 रुपये
कुशल	157.51 रुपये
अत्यंत कुशल	196.89 रुपये

35. क्लैरिकल कुशल श्रमिक को कुशल तथा अत्यंत कुशल श्रमिकों के मध्य श्रेणीबद्ध किया जा सकता है।

36. ऊपर वर्णित निचले स्तर पर न्यूनतम वेतन असंगठित क्षेत्र में सभी रोजगारों के लिये लागू किये जाने चाहिये। इनमें सेवा क्षेत्र (आइ एस डी सी, सुरक्षा सेवाएं, सहकारिताएं) भी सम्मिलित हैं।

37. **लचक**

उपरोक्त निचले स्तर के न्यूनतम वेतन लचीले होंगे। यह राज्यों की स्थानीय स्थितियां पर निर्भर करता है।

38. **प्रशासकीय निकायों की भूमिका**

हमारा अनुभव रहा है कि अनेक राज्यों में न्यूनतम वेतन लागू कराने के लिये उत्तरदायी

प्रशासकीय प्राधिकरण होने पर भी वे न्यूनतम वेतन लागू कराने की दिशा में कोई पहल कदमी नहीं करते हैं। यहां तक कि प्रशासकीय निकाय प्राय: नियोजक की रक्षा करते हैं जो न्यूनतम वेतन लागू करना ही नहीं चाहता।

39. **इस लिये हम सुझाव देते हैं कि –**

क) जिला स्तर पर न्यूनतम वेतन को लागू कराने की प्रक्रिया पर दृष्टि रखने के लिये त्रिपक्षीय समितियों जिनमें श्रमिकों के प्रतिनिधि भी हों, का गठन किया जाना चाहिये।

ख) नियोजक द्वारा न्यूनतम वेतन अधिनियम का उल्लंघन दण्डनीय अपराध माना जाए और उसके अनुसार उसके विरुद्ध समुचित कार्रवाई की जानी चाहिये।

ग) नियोजक द्वारा नियुक्ति पत्र/ पहचान पत्र जारी करना कानूनी रूप से अनिवार्य बनाया जाए ताकि न्यूनतम वेतनों के भुगतान को सुनिश्चित बनाया जा सके।

40. **न्यूनतम वेतन अधिनियम में संशोधन**

हमारा अनुभव दर्शाता है कि हमारे देश में न्यूनतम वेतन अधिनियम श्रमिक हितों के अनुकूल कदापि नहीं है। हमारा दृढ़ विचार है कि इस अधिनियम में विशेष रूप से संशोधन किया जाना चाहिये और अधोलिखित बिंदू उसमें जोड़े जायं:

क) न्यूनतम वेतन अधिनियम में 15वें आइ एल सी के निर्णयों तथा उच्चनतम न्यायालय के निर्णयादेश के अनुसार आवश्यकता पर आधारित वेतन जोड़े जाने चाहिये।

ख) अधिनियम में संशोधन किया जाए। उसमें अकुशल, अर्धकुशल, कुशल तथा अत्यंत कुशल श्रमिकों को श्रेणीबद्ध किया जाए और उसके अनुसार उनके न्यूनतम वेतन निर्धारित किये जायं। इसकी परिधि में सेवा क्षेत्र सहित सभी रोजगारों को लाया जाए। तथापि यह उन मामलों में लागू हो सकता है जहां समझौतों अथवा अन्य कार्रवाइयों के माध्यम से उच्चतर वेतनों का निर्धारण किया गया है।

ग) उपयुक्त प्रावधानों में संशोधन किया जाए ताकि उन्हें लागू न करने वाले नियोजक को कठोर दण्ड दिया जा सके। न्यूनतम वेतन न देने वाले नियोजक को जेल में डाल देना चाहिये। आइ पी सी तथा सी आर पी सी के उपयुक्त प्रावधान किये जाए।

घ) उसके अनुसार अधिनियम में संशोधन किया जाए; उसमें संविधान की 9वीं अनुसूची सम्पादित की जाए ताकि नियोजक अदालत का द्वार न खटखटा सके।

ङ) अधिनियम में संशोधन किया जाना चाहिये ताकि प्रत्येक 6 मास पश्चात् न्यूनतम वेतन में संशोधन किया जा सके अथवा 50 बिंदुओं की वृद्धि जो भी पहले

हो, दी जा सके।

च) वर्तमान अधिनियम में छूट देने वाला अनुच्छेद समाप्त किया जाए।

छ) न्यूनतम वेतन को वेतनमान घोषित करते समय वार्षिक वृद्धि की घोषणा भी की जाए।

ज) अधिनियम को निर्वाह व्यय का पूर्ण निष्प्रभावन प्रदान करना होगा।

आवश्कयता पर आधारित वेतन के लिये अभियान

41. महापरिषद (जनरल कौंसिल) में विचार विमर्श के पश्चात् निर्णय लिया गया-

1. हमें 15वें आइ एल सी द्वारा निर्धारित नियमों तथा 25 प्रतिशत अतिरिक्त वेतन देने के निर्णयादेश के अनुसार आवश्यकता पर आधारित वेतन पाने के लिये जोरदार अभियान चलाना तथा संघर्ष करना चाहिये। हमारा अभियान शिक्षाप्रद हो ताकि श्रमिकगण 15वें आइ एल सी के निर्णयों और अपनी आवश्यकताओं से जागरूक हो सकें, न केवल पोषण भी दृष्टि से अपितु उच्चतम न्यायालय के निर्णयादेश सहित अन्य आवश्यकताओं की दृष्टि से भी। इस अभियान को निरंतर जारी रखना आवश्यक है ताकि धीरे-धीरे संघर्ष के द्वारा आवश्यकता पर आधारित वेतन प्राप्त किया जा सके।

उन्हें यह बात समझ लेनी चाहिए कि वे दोनों समय उदारपूर्ति करने की स्थिति में भी नहीं है क्योंकि असंगठित क्षेत्र में उन्हें गरीबी की रेखा से भी नीचे के वेतन दिये जाते हैं।

2. परिवार की इकाई 5 सदस्यों पर आधारित हो, तीन सदस्यों पर नहीं।

3. यहीं पर बस नहीं, श्रमिकों को निर्वाह व्यय में वृद्धि होने पर पूर्ण निष्प्रभाव की मांग करनी चाहिये। उनके वेतन उपभोक्ता मूल्य सूचक अंक के साथ स्वयंमेव जुड़े हों और उनके वेतन में प्रत्येक छः मास के पश्चात् संशोधन हो अथवा सूचकांक में 50 पैसे प्रति बिंदू की दर से वृद्धि जो भी पहले हो, दी जाए।

आंदोलन

42. राज्य स्तरीय जनसभाएं तथा प्रदर्शन। इनकी परिणति सितंबर 1997 में दिल्ली में एक केंद्रीय जन सभा के रूप में होगी। उसके पश्चात् एक प्रतिनिधिमंडल प्रधान मंत्री तथा श्रम मंत्री से भेंट करेगा।

संरचनात्मक सुधार: भारत में श्रमिक वर्ग तथा श्रमिक आंदोलन पर उनका प्रभाव

1. वर्ष 1991 में संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम (सट्रक्चरल एडजस्टमैंट प्रोग्राम) के लागू होने के पश्चात् ''बाजार अर्थ व्यवस्था'' की ''चमत्कारिक शक्ति'' का भारी उत्साह के साथ प्रचार किया गया था। यह कहा गया कि मानों बाजार अर्थ व्यवस्था को भारत में पहली बार वर्ष 1991 में ही शुरू किया गया और ऐसा जताने का प्रयास किया गया कि इससे पूर्व भारतीय अर्थ व्यवस्था में बाजार की तो कोई भूमिका ही नहीं थी।

2. किन्तु तथ्य तो यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की अवधि में भारतीय अर्थ व्यवस्था ने विकास के पूंजीवादी पथ को ही चुना था और उसमें बाजार की शक्तियों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया और इस अवधि में बाजार के समीकरण ऐसे रहे जिन्हें भारत के संदर्भ में आदर्श नहीं माना जा सकता जैसा कि हमारे नीति निर्धारकों ने दावा किया था।

3. स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के सत्ताधारी वर्ग ने स्थिति की अनिवार्यता के चलते देश के आधारभूत तथा भारी उद्योगों, पूंजीगत सामान तथा आंतरिक संरचनात्मक उद्योगों के निर्माण में राज्य के हस्तक्षेप तथा राज्य की सामूहिक भूमिका की नीति को लागू किया ताकि निजी निवेशकों के लिये जीवंत आधार उपलब्ध कराया जा सके। इसके परिणामस्वरूप विशालकाय सार्वजनिक क्षेत्र के नेटवर्क का अभ्युदय हुआ था।

आर्थिक गतिविधियों से राज्य का पीछे हटना

4. वर्ष 1991 में आर्थिक गतिविधियों से राज्य के पूर्णतया पीछे हटने के दर्शन और यहां तक कि आर्थिक तथा विकास के पथ के विनियमन में उसकी भूमिका भी इसमें सम्मिलित है, वर्तमान स्थितियों में भारतीय सत्ताधारियों द्वारा उठाए जाने वाले कोष/बैंक मार्का आर्थिक उपाय क्या हैं। इसका अर्थ है- उद्योग में राज्य की नियामक एवं हस्तक्षेपकारी प्रत्यक्ष भूमिका

की समाप्ति! और इसलिये सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों का निजीकरण, भारतीय अर्थ व्यवस्था को विदेशी पूंजी के लिये पूर्णतया खोल देने, श्रमिकों के संदर्भ में राज्यों की भूमिका की समाप्ति और श्रमजीवी जनता को श्रम बाजार में मांग एवं आपूर्ति के हथकण्डों एवं बाजार के प्रभुओं की दया पर छोड़ देने जैसी बातें होने लगी हैं। बैंक/कोष दृष्टिकोण के अनुसार राज्य अथवा सरकार केवल बाजार के खिलाड़ियों (केवल पूंजीवादी शक्ति के लिये) के लिये मुक्त एवं अनुकूल वातावरण उपलब्ध करा सकते हैं। और यह काम उन्हें पूर्ण विनियमन के माध्यम से करना होगा।

दोषपूर्ण नीति की परिणति तथा सामंतवाद के साथ समझौता

5. "मिश्रित अर्थव्यवस्था" के तथाकथित माडल को स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ही अपना लिया गया था। इस माडल में भी मूलभूत दुर्बलताएं हैं और भारत में आर्थिक विकास का इतिहास दर्शाता है कि भारत के सत्ताधारियों ने अपनी राजनीतिक अनिवार्यताओं के चलते इन दुर्बलताओं को और बढ़ाया तथा उन्हें पुष्ट किया है। यही नहीं आर्थिक विकास में राज्य की भूमिका जिसकी परिकल्पना 1956 की औद्योगिक नीति के प्रस्ताव में की गई थी, की धार को निरंतर कुंद किया जाता रहा है और छिन्न-भिन्न करके उसे एकपक्षीय रूप से प्रभावी बनाया गया है। उसकी मूलभूत दुर्बलताओं में से एक भारत के नीति निर्धारकों की सामंतवादी शक्तियों के साथ समझौता करने की प्रवृति तथा भारत के कृषि क्षेत्र जहां 70 प्रतिशत जनसंख्या है, में सामंती भूमि सम्बन्धों की समाप्त करने में विफलता रही है। पूंजीवादी पथ का अनुसरण करते हुए देश के उद्योगीकरण के लिये किये गए प्रयासों तथा उनके साथ-साथ ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में सामंती आर्थिक संरचना का आधिपत्य एवं सहअस्तित्व का दुष्परिणाम एक ओर विशाल ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में उपलब्ध कराए गए दुर्लभ संसाधनों का मुट्ठी भर ग्रामीण भूपति वर्ग के हाथों में अनुत्पादक जमाव तथा दूसरी ओर भारत की बहुसंख्य जनता के धीरे-धीरे दरिद्रता की दलदल में धंसते चले जाने के रूप में निकला है। इसके चलते औद्योगिक उत्पादों के लिये स्वदेशी बाजार के सिकुड़ने तथा उद्योगों का विलंबित विकास एवं क्षमताओं के अपूर्ण उपयोग के अतिरिक्त आर्थिक विकास के लिये संसाधन उपलब्ध कराने का संकट उत्पन्न हो गया है।

6. सामंती भूमि सम्बन्धों को समाप्त करने में भारतीय शासकों की विफलता ने औद्योगिकीकरण की गति तथा चरित्र में अनेक विसंगतियां उत्पन्न कर दी हैं और इसके फलस्वरूप वर्तमान में विद्यमान अर्थ व्यवस्था के मूल ढांचे के भीतर उपलब्ध पूंजीवादी विकास की पूर्ण संभावनाओं तथा क्षमताओं का भी उपयोग नहीं हो पाया। और वास्तव में सामंतवाद के साथ ये समझौते आर्थिक गतिविधियों पर राज्य के नियंत्रण की नीति की धार को वर्षों से कुंद करने की प्रक्रिया तथा आयात-प्रतिस्थापन की नीति का परिणाम ही है।

इसके अंतर्गत अधिक से अधिक क्षेत्रों को निजी क्षेत्र तथा विदेशी पूंजी के लिये खोल दिया गया है। इसमें उल्लेखनीय 1980 में नीतिगत दिशा में लाया गया भारी परिवर्तन सम्मिलित है। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के लिये आरक्षित क्षेत्रों को निजी पूंजी के लिये अधिक प्रवण (प्रोन) बना दिया गया और भारतीय अर्थ व्यवस्था के बाढ़ द्वारों की पूंजीगत सामान, उपभोक्ता वस्तुओं के तथा उनके उपकरणों के आयात के लिये विशाल स्तर पर खोल दिया गया। इसके चलते भारतीय उद्योग की आयातों पर निर्भरता कई गुणा बढ़ गई है और व्यापार की खाई और चौड़ी हो गई है। इसकी परिणति 1980 के दशक के अंत में तथा 1990 के दशक के प्रारम्भ में उत्पन्न विदेशी मुद्रा के संकट के रूप में हुई है।

7. अत: निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सामंतवाद के साथ अपवित्र गठबंधन तथा औद्योगिक आर्थिकता पर उसके प्रभाव के कारण नवीनतम संकट उत्पन्न हुआ है। इसकी परिणति संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम के कोष/बैंक स्वरूप के समक्ष भारतीय शासकों के आत्म समर्पण के रूप में हुई है। मूल रूप से यह संरचना अंतराष्ट्रीय वित्तीय पूंजी के विकासशील देशों जिनमें भारत की सम्मिलित है, की अर्थ व्यवस्थाओं में अनुप्रवेश को सहज बनाने के लिये की गई है। यह काम इन देशों के स्वदेशी उद्योग तथा आत्मनिर्भर विकास के मूल्य पर किया जा रहा है। पूर्व सोवियत संघ तथा पूर्वी यूरोप में समाजवाद का पराभव होने के कारण यह प्रक्रिया और तीव्र हुई है और साम्राज्यवादी शक्तियां विकासशील देशों की अर्थ व्यवस्थाओं पर धावा बोलने के लिये और दु:साहसी हो गई हैं, इसमें संदेह नहीं है।

8. सामंती तत्वों ने भी भारतीय अर्थ व्यवस्था की संरचना में सामाजिक पिछड़ेपन की दृष्टि से अपना शाखा विस्तार किया है। औद्योगिक प्रबंधन पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ा है और इसके साथ-साथ इसका प्रकटीकरण देश के सार्वजनिक क्षेत्र के विशाल नेटवर्क के कुप्रबंधन के रूप में हो रहा है।

9. रेखांकित करना होगा कि कोष/बैंक ने अपने सुधार पैकेज में भूमि सुधारों को सम्मिलित नहीं किया है। इसके विपरीत उदारीकरण की नीति ने कृषि के और अधिक व्यवसायीकरण को प्रोत्साहित किया है और उसे निर्यातोन्मुखी बनाया है। इसका परिणाम 20 लाख भूमि में अनाज के स्थान पर नकदी फसलों का उत्पादन होने लगा है। इससे भारत की खाद्य सुरक्षा ही खतरे में पड़ गई है। कृषि के व्यावसायीकरण पर और बल देने के कारण ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में भूमि के कुछ हाथों में चले जाने के लिये अनुकूल वातावरण बन रहा है। यह प्रक्रिया पहले ही अनेक स्थानों पर शुरू हो चुकी है। इसके लिये संदिग्ध हथकण्डे भी अपनाए जा रहे हैं।

जनगण के मूल्य पर पूंजी को सभी सुविधाएं

10. नयी नीतिगत सत्ता भारतीय अर्थव्यवस्था के द्वारा पूर्ण रूप से बाहरी विश्व के लिये

खोल देने और इसके साथ-साथ सभी प्रकार की आर्थिक गतिविधियों से राज्य द्वारा अपना पल्लू छुड़ा लेने की दिशा की ओर अग्रसर है। वह केवल आंतरिक संरचना तथा कानूनी ढांचा उपलब्ध कराने का कार्य करता है। आंतरिक संरचना के क्षेत्र में भी राज्य की ओर से क्रय-गारंटी तथा लाभ गारंटी के रूप में निजी तथा विदेशी पूंजी की विशाल स्तर पर सहायता की जा रही है। नयी स्थितियों में राज्य से अपेक्षा की जाती है कि वह जन साधारण को उपलब्ध कराई जाने वाली सभी प्रकार की सब्सिडी वापस ले लेवे, और कार्पोरेट सेक्टर तथा बुर्जुआजी को उसकी आय तथा लाभ पर किसी भी कर के बोझ से पूर्णतया मुक्त कर दे। राज्य से यह अपेक्षा भी की जाती है कि वह सार्वजनिक क्षेत्र को खण्डित कर दे, अर्थव्यवस्था पर अपने नियंत्रण को ढीला कर दे तथा इस प्रकार देश के औद्योगिक आधार का क्षरण हो लेने दे। सिकुड़ते स्वदेशी बाजार की पृष्ठभूमि में निर्यातोन्मुखता किसी भी उत्पादक-उद्यम के लिये प्रेरक शक्ति हो और इसलिये आयातों पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाया जाना चाहिये।

11. केंद्रीय सरकार के उत्तरोत्तर वार्षिक बजटों विशेष रूप से वर्ष 1991 के पश्चात्, ने उपरोक्त दिशा तथा अवधारणा के प्रति अपनी दृढ़प्रतिबद्धता को व्यक्त किया है। इनके अंतर्गत सीमा शुल्कों में जबरदस्त कटौती की गई है, कार्पोरेट तथा सम्पत्ति कर में भारी राहत दी गई है, इजारेदार घरानों तथा विदेशी पूंजी को उदार छूटें और इसके साथ-साथ दरिद्रता उन्मूलन, शिक्षा तथा सामान्य जनता के हित की सभी मदों पर धन के आबंटन को कम करने जैसी बातें हो रही हैं। आर्थिक गतिविधियों से राज्य के पीछे हटने का प्रकटीकरण धीरे-धीरे पूंजी विनिवेश करके सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों के निजीकरण, सार्वजनिक क्षेत्र की बीमार इकाईयों की पुनर्जीवित नहीं करने तथा दूरसंचार, खनन, तेल, ऊर्जा, प्रतिरक्षा उद्योगों बीमा (अब तक आंशिक रूप से) इत्यादि अति संवेदनशील क्षेत्रों को निजी तथा विदेशी पूंजी के लिये खोला जा रहा है।

12. सामान्य जन गण द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली अनिवार्य उपभोक्ता वस्तुओं पर कर अभी भी आप का प्रमुख स्रोत बना हुआ है। उसकी भी अपनी सीमाएं हैं। सामान्य रूप से नयी नीतिगत सत्ता के अंतर्गत सरकार के राजस्व का आधार उल्लेखनीय सीमा तक दुर्बल हो गया है। पिछले बजट के पश्चात् कर जी डी पी अनुपात केवल 10.5 प्रतिशत पर स्थिर जबकि उसकी तुलना में अनेक विकासशील देशों में यह अनुमान 20 प्रतिशत था। अत: इजारेदार गृहों, विदेशी पूंजी तथा ग्रामीण क्षेत्र के समूह वर्ग को करों में भारी छूटें देने के चलते देश के राजस्व-आधार के सिकुड़ने की पृष्ठभूमि में और विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा वित्तीय घाटे में भारी कमी लाने के लिये लादी गई शर्त एवं बाध्यता के कारण सामान्य जनगण के कल्याण तथा मूलभूत अनिवार्य सेवाओं पर होने वाले खर्च में जबरदस्त कटौती की जा रही है। इसका दुष्प्रभाव जनजीवन तथा जनता के जीवन स्तर पर पड़ता है। तथा स्वदेशी बाजार और भी सिकुड़ कर रह जाता है। संक्षेप में, इस पूरे बजट तथा वित्तीय कार्यकलाप की पूरी दिशा आर्थिक क्षेत्र में धीरे-धीरे राज्य की भूमिका को हाशिये पर धकेल देने वाली

है ''सामाजिक कल्याणकारी राज्य'' की तथाकथित अवधारणा धीरे-धीरे अपना अर्थ खोती चली जा रही है। और उसके स्थान पर ''जिसकी लाठी उसकी भैंस'' के सिद्धांत को ही पुनः लागू किया जा रहा है।

अतः स्वाभाविक है कि नयी नीतियों की शाखाओं-प्रशाखाओं ने भारतीय अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण शरीर पर अपना दुष्प्रभाव छोड़ा है।

ऋण का मकड़जाल

13. वर्ष 1990 में भुगतान संतुलन के संकट को ही पुरानी नीति का परित्याग करके कोष/बैंक के नुसखों पर आधारित उदारीकरण की नीति लागू करने का मूल कारण बताया गया था। नयी नीति का अनुपालन करते हुए पांच वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, इस पर भी भुगतान संतुलन का संकट बना हुआ है और देश का ऋणों के मकड़जाल में फंस जाना अवश्यंभावी प्रतीत होने लगा है। वर्ष 1995 में चालू बजट घाटा 2.1 लाख करोड़ से बढ़ गया था। देश में विदेश मुद्रा का भंडार यद्यपि प्रत्यक्ष यप से उसकी अत्यन्त उत्साहवर्धक स्थिति दर्शाई जाती है और वह मार्च 1996 के अंत में 21,6870 लाख डालर था, किन्तु उसका बहुत बड़ा भाग विदेशों में प्राप्त किये गए ऋण तथा पोर्टफोलियो निवेश से होने वाली राशि के अन्तर्वाह का ही है। और यह भंडार भी देखते ही देखते उड़न छू हो जाएगा। विश्व बैंक ने भी इस तथ्य को अपनी नवीनतम रिपोर्ट में स्वीकार किया है। प्रति वर्ष विदेश पूंजी के कुल अंतर्वाह में 70 प्रतिशत से अधिक विदेशी पूंजी पोर्टफोलियो निवेश के रूप में आती है। यह क्रम उदारीकृत सत्ता के पिछले पांच वर्षों से जारी है। देश पर विदेशी ऋण जी डी पी का 32.8 प्रतिशत (96 लाख करोड़ डालर) बना हुआ है।

बढ़ती दरिद्रता, गिरते वास्तविक वेतन

14. नयी नीति का श्रमिकों पर अत्यंत घातक दुष्प्रभाव पड़ा है। उदारीकरण की नीति ने देश की 80 प्रतिशत से अधिक जनता के जीवन को दुःखदायी बना डाला है। अनिवार्य उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य आकाश को छू रहे हैं। और इसके चलते समाज के सभी वर्गों के जीवन स्तर में भारी गिरावट आई है। आनुपातिक वार्षिक मुद्रास्फीति 10 प्रतिशत है, इसकी पृष्ठभूमि में सामान्य जनगण की क्रय शक्ति में चौंका देने वाली सीमा तक गिरावट आ गई है। यहां तक कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से खाद्यान्नों की बिक्री में जबरदस्त कमी हुई है। वर्ष 1991-92 में इन खाद्यान्नों की बिक्री 188 लाख टन थी जबकि 1994 में यह कम होकर 141 लाख टन रह गई और उसके बाद के वर्षों में भी यही रुझान चल रहा है।

15. खेत मजदूर जो श्रम शक्ति की विशाल बहुसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं, के वास्तविक वेतनों में भी भारी कमी आई है। भरपूर मानसून होने पर भी अनाज के उत्पादन में हाल ही के वर्षों में कमी आई है। नेशनल सेम्पल सर्वे के अनुमानों के अनुसार भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में दरिद्रता 1990-91 के 34.04 प्रतिशत से बढ़ कर 1994 के अंत तक लगभग 44 प्रतिशत हो गई थी और निरपेक्ष रूप में इस समय ग्रामीण भारत में दरिद्रजनों की संख्या 24.50 करोड़ तक पहुंच चुकी है।

बढ़ती बेरोजगारी

16. नयी नीति की सत्ता का सबसे बड़ा शिकार भारत का विद्युत उत्पादन क्षेत्र रहा है। इसके फलस्वरूप नीति निर्धारकों का यह दावा सत्य सिद्ध नहीं हो पाया कि इसके चलते देश में रोजगार बढ़ेगा तथा समृद्धि आएगी। बेरोजगारी की दर निरंतर चौंका देने वाली सीमा तक बढ़ रही है। वर्ष 1991 में यह दर कुल श्रम शक्ति का 3.1 प्रतिशत थी और 1994 में बढ़कर 5.5 प्रतिशत हो गई। बेरोजगारी में वार्षिक वृद्धि की दर रोजगार कार्यालयों में पंजीकृत नामों के अनुसार वर्ष 1995 में पहले ही 2.80 करोड़ तक पहुंच चुकी है। रोजगार सर्जन निरंतर नहीं हो रहा। यहां तक कि जी डी पी की निस्तेज वृद्धि का भी उस पर कोई प्रभाव नहीं हो रहा। नयी नीति सत्ता के अंतर्गत रोजगार वृद्धि की क्षमता में निरंतर कमी हुई है। वर्ष 1994 में यह केवल 0.41 प्रतिशत थी। इसके चलते हमें रोजगार विहीन सत्य का सामना करना पड़ रहा है।

17. उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त असंगठित तथा ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त अर्ध रोजगार की स्थिति पूर्ण बेरोजगारी में परिवर्तित हो रही है। इस परिवर्तन के भी समुचित कारक हैं; इसके चलते बेरोजगारी की दर निश्चित रूप से कम से कम 25 प्रतिशत बढ़ जाएगी।

18. समस्या का अंत यहीं पर नहीं हो जाता। इसके साथ-साथ हमें औद्योगिक बीमारी तथा श्रम शक्ति के आधिक्य की समस्या के साथ भी दो चार होना पड़ रहा है। एक अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार औद्योगिक बीमारी तथा विभिन्न अन्य कारणों से चलते संगठित क्षेत्रों में श्रम शक्ति का आधिक्य 25 लाख तक पहुंच चुका है। इनमें से लगभग 7 लाख श्रमिक बीमार औद्योगिक इकाइयों में कार्यरत हैं जो सरकारी तथा अर्ध सरकारी संगठनों में कार्यरत श्रमशक्ति के 18.2 प्रतिशत है। निजी संगठित क्षेत्रों में श्रमिकों का आधिक्य 13 लाख तथा उद्योगों के लघु क्षेत्र में लगभग 10 लाख है।

रोजगार सर्जन पर रोजगार क्षति की काली छाया

19. उदारीकरण लागू होने के बाद की अवधि में रोजगार सर्जन का ढांचा कुछ कटु सत्यों

का उद्घाटन करता है। वर्ष 1991-95 के दौरान संगठित क्षेत्र द्वारा रोजगार का सर्जन प्रति वर्ष एक प्रतिशत से कहीं कम किया गया। यह अधिकांशतया 0.5 प्रतिशत से भी नीचे रहा। संगठित क्षेत्र की अपेक्षा अनौपचारिक/असंगठित क्षेत्र में रोजगार सर्जन की दर अधिक रही, इसमें संदेह नहीं। किन्तु असंगठित क्षेत्र में रोजगार विहीनता की बारम्बारता और ऋतुनिष्ठ तथा अस्थायी श्रमिकों की पुरानी प्रकृति के चलते रोजगार वृद्धि की यह दर अवरुद्ध होकर रह गई है। यहीं पर बस नहीं औद्योगिक बीमारी तथा श्रम शक्ति को तर्कसंगत बनाने की प्रक्रिया के चलते संगठित क्षेत्र में रोजगार की क्षति हुई है। शुद्ध अर्थों में रोजगार वृद्धि लगभग नकारात्मक ही रही है।

श्रमशक्ति का अस्थायीकरण

20. पूर्ण कालिक उत्पादक रोजगार का सर्जन करने की अपेक्षा उदारीकरण की नीति ने समग्र रूप में श्रम शक्ति का अधिक अस्थायीकरण तथा अनौपचारिककरण किया है। उद्योग के लगभग सभी क्षेत्रों में भारी संख्या में स्थायी रोजगार समाप्त किये जा रहे हैं और ये काम ठेकेदारों तथा सहायक एजेंसियों को दिये जा रहे हैं। औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में यह एक स्थायी संवृति बन चुकी है। संगठित क्षेत्र और विशेष रूप से सरकारी सेवा क्षेत्र संविदा (ठेका) प्रणाली के सबसे बड़े प्रोन्नक के रूप में उभर चुके हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के इस्पात श्रमिकों में 80,000 से अधिक संविदा श्रमिक हैं और भारतीय रेलवे ने रेल परिचालन के विभिन्न चरणों में एक लाख से अधिक संविदा कर्मचारी रखे हैं। डाक तार सेवाएं, दूरसंचार सेवा तथा सार्वजनिक क्षेत्र की अनेक अन्य निर्माता तथा सेवा इकाइयों जैसे विभिन्न सरकारी विभागों के मामले में भी यही स्थिति बनी हुई है। इन विभागों में नियमित रूप से पुरानी श्रम शक्ति को घटाया जा रहा है और उसके स्थान पर संविदा श्रमिकों की भर्ती की जा रही है। सम्पूर्ण निर्माण उद्योग जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयां भी सम्मिलित हैं, संविदा अथवा अस्थायी श्रम शक्ति के आधार पर चल रही है। बाजार संचालित तथाकथित नीतिगत सत्ता के स्थापित होने के पश्चात् काम के संविदाकरण तथा अस्थायीकरण की गति ने और लम्बी छलांग लगाई है।

21. नयी आर्थिक नीतिगत सत्ता उद्योगों में उत्पादन-संगठनों में कुछ संरचनात्मक परिवर्तन लाने की दिशा में भी अपना योगदान दे रही है। इसका रोजगार ढांचे, रोजगार की स्थिति तथा यूनियनकरण पर प्रभाव पड़ना भी अवश्यंभावी है। ये परिवर्तन अत्यंत विशाल स्तर पर हो रहे हैं और नयी नीतिगत सत्ता इन परिवर्तनों को बढ़ावा दे रही है। ऐसी भी उदाहरणें हैं जहां कम्पनियां कभी अपने बड़े कारखानों में उत्पादन के जबरदस्त ढांचे को चलाती थी, उनमें हजारों श्रमिक काम करते थे। इन श्रमिकों को आफ-लोडिंग प्रक्रिया के अंतर्गत बाहर धकेल दिया गया और वे अनेक लघु इकाइयों/एजेंसियों तथा गृह आधारित इकाइयों में स्थानांतरित

हो गए। यह काम श्रमिक शक्ति के आधिक्य को दर्शा कर, कारखाने को न चला कर, उन्हें बीमार घोषित करके किया गया। बाटा और बिजली एवं इलेक्ट्रानिक सेक्टर की अनेक इकाईयां उत्पादन विकेन्द्रीकरण के रुझान की उद्धरणें हैं।

वास्तव में उत्पादन की कारखाना प्रणाली में विक्रेन्द्रीकरण का यह रुझान पहले ही शुरू हो चुका था जिसके अंतर्गत श्रम शक्ति का अनौपचारिककरण अधिक हुआ है। और यह श्रम शक्ति के अधिकाधिक असंगठित क्षेत्र में स्थानांतरित होने की प्रक्रिया बन रही है। हमारे जैसे भारी-बेरोजगारी के परिदृश्य में, इस प्रकार का रुझान श्रम मानकों तथा रोजगार की गुणवत्ता में तेजी से आ रही गिरावट की ओर संकेत करता है। इसके अतिरिक्त इसका श्रम शक्ति के यूनियनकरण पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है। विकेंद्रीकृत कारखाना व्यवस्था के उक्त रुझान ने असंगठित क्षेत्र की समस्या में नये आयाम जोड़े हैं जो दीर्घावधि से श्रम सघनता के आधिपत्य वाला रहा है और जो वर्गीकरण की दृष्टि से अकुशल श्रेणी के श्रमिक हैं।

ट्रेड यूनियन अधिकारों पर हमला

22. उदीकरण की नयी नीति ने श्रमिकों के ट्रेड यूनियन तथा जनवादी अधिकारों पर अपने हमले और तेज कर दिये हैं।

23. श्रमिक तथा जनवादी आंदोलन की शक्ति इस विशाल देश में असमान रूप से फैली है और देश में श्रमिक आंदोलन के कमजोर आधार वाले स्थानों में कानून नाम की कोई वस्तु नहीं है और कर्मचारियों का बेरोकटोक शोषण होता है। असंगठित क्षेत्र के श्रमिक इससे सर्वाधिक पीड़ित हुए हैं। नियोजकों द्वारा नृसंसतापूर्वक श्रम कानूनों तथा श्रमिकों को देय विधायी न्यूनतम वेतन एवं अन्य मूलभूत सुविधाएं, प्रदान करने, दुर्घटना लाभ देने तथा सुरक्षा नियमों का पालन करने जैसे अपने विधायी दायित्वों की धज्जियां उड़ाई जा रही हैं। पूरे देश भर में फैले निर्यात प्रसंकरण अंचलों में स्थिति बदतर हो चुकी है। यहां तक कि श्रमिक संघों को भी उनके परिसरों में घुसने नहीं दिया जाता और श्रमिक अत्यंत अमानवीय स्थितियों में वहां काम करने के लिए विवश होते हैं। उन्हें अत्यंत अल्प वेतन दिये जाते हैं और काम से निकाल बाहर करने की नंगी तलवार सदा उनके सिरों पर लटकाएं रखी जाती है।

24. निर्यात प्रसंस्करण अंचलों में यह संवृति विशेष रूप से व्याप्त है। इस बात की उद्धरणें मिली हैं कि ऐसे अंचलों में स्थापित औद्योगिक इकाईयां "कर मुक्ति अवकाश" की पांच वर्ष की अवधि समाप्त होते ही बंद कर दी गईं। श्रमिकों को बेरोजगार कर दिया गया। कुछ इकाईयों को नयी कम्पनी के नाम से खोला जा रहा है। उसमें नए श्रमिकों की भर्ती की जाती है और इस प्रकार ने एक बार फिर "कर मुक्ति अवकाश" से लाभ उठाता है।

25. सरकारों द्वारा श्रम कानूनों का ऐसा उल्लंघन प्रत्यक्ष रूप में किया जाता है। इसके लिये

उन्होंने विभिन्न राज्यों में सम्बन्धित प्रवर्तन प्राधिकरणों द्वारा प्रबंधन में हस्तक्षेप न करने के लिये समय-समय पर निरीक्षण करने की प्रणाली का परित्याग कर दिया गया है। इसके साथ ही श्रम विभाग के अंतर्गत अत्यंत अकुशल तथा कछुए की चाल से विवादों का निपटारा करने वाले तंत्र के गठन ने रही सही कसर को भी पूरा कर दिता है।

26. संगठित क्षेत्र में यूनियनकरण की दर अपेक्षाकृत ऊंची है। इस क्षेत्र में श्रमिकों के ट्रेड यूनियन अधिकारों पर हमले बढ़ रहे हैं। बीमा क्षेत्र के कर्मचारियों को सामूहिक सौदेबाजी का अधिकार प्राप्त नहीं है। सरकार किसी भी कानूनी हड़ताल को गैर कानूनी करार देने के अपने अधिकार को बढ़ रही है। इस प्रकार की कार्रवाईयां उसने कोयला उद्योग, डाक एवं तार क्षेत्र तथा सफदरजंग अस्पताल के कर्मचारियों की हड़तालों के मामले में की है। पिछले पांच वर्षों में ट्रेड यूनियन कार्रवाईयों पर एसमा लागू करने के मामले कई गुणा बढ़ चुके हैं। केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों के संघों को मान्यता देने के सम्बन्ध में एकपक्षीय ढंग प्रतिगामी कानून लागू करना श्रमिकों के ट्रेड यूनियन अधिकार का निर्लज्ज हनन करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

श्रम बाजार के विनियमीकरण की ओर

27. कोष/बैंक की उदारीकरण नीति का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अवयव श्रमिकों का विनियमीकरण करना है। नयी नीतिगत सत्ता के अंतर्गत श्रम कानूनों की ओवरहालिंग करने का प्रस्ताव है ताकि श्रमिकों ने जो भी नाममात्र के अधिकार प्राप्त किये हैं, उन्हें उनसे भी वंचित कर दिया जाए। वर्तमान श्रम कानूनों की पहले ही बहुत कम सीमाएं हैं और उनका झुकाव भी नियोजकों के पक्ष में है। किन्तु अभी भी सत्ताधारी वर्ग विदेशी निवेशकों तथा भारतीय पूंजीपतियों के दबाव में आकर श्रमिकों को संरक्षण देने वाले किसी भी कानून भले ही उसका अधिकार क्षेत्र कितना भी छोटा क्यों न हो, को समाप्त कर देने की तत्पर है ताकि श्रमिकों को पूर्णतया अधिकार विहीन बना दिया जाए; श्रमिक अपने अधिकार का उपयोग नहीं कर सकें और नियोजक श्रमिकों को अपनी इच्छानुसार काम पर रखने और जब चाहे निकाल बाहर करने का अधिकार प्राप्त करके श्रमिकों के प्रति अपने कानूनी दात्यिवों से मुक्ति प्राप्त कर सकें। औद्योगिक संबंधों सम्बंधी कानून के प्रस्तावों जिन्हें भारतीय श्रम सम्मेलन में प्रसारित किया गया था, को यदि ध्यानपूर्वक पढ़ा जाए तो नियोजकों तथा सरकार की हताशा भरी कार्रवाईयां अनावृत हो जाती हैं।

28. उदीकरण की नीतियों के धर्मगुरू अर्थशास्त्री यह तर्क देना चाहते हैं कि श्रम कानूनों का विनियमीकरण अथवा दूसरे शब्दों में श्रम कानूनों की कठोरता को कम करना आवश्यक है ताकि श्रमिकों को जब चाहे रखने और जब चाहे निकाल बाहर करने सम्बंधी नियोजकों के अधिकार को सुनिश्चित बनाया जा सके। और यह रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध

कराने का उपकरण सिद्ध होगा। किन्तु न केवल भारत में अपितु विश्व भर में इस प्रकार की कार्रवाईयों के संबंध में हमारा अपना अनुभव अलग कहानी ही कहता है। आइ एल ओ द्वारा प्रकाशित विश्व रोजगार रिपोर्ट (1996-97) ने टिप्पणी की है, "आंखें मूंद कर इस तथ्य को मान लेने का कोई आधार नहीं है कि ये कानून निश्चित रूप से कठोर हैं और कि विनिमयीकरण से स्वयंमेव ही समस्या (बेरोजगारी की समस्या का) समाधान निकल आएगा।"

सर्वव्यापी गिरावट

29. पिछले पांच वर्षों से अपनाई गई उदारीकरण की नीति के चलते अर्थ व्यवस्था के सभी क्षेत्रों में सर्वव्यापी गिरावट आई है और इसका सर्वाधिक दुष्प्रभाव श्रमिक वर्ग पर पड़ा है।

30. सर्वप्रथम इसने औद्योगिक बीमारी को बढ़ाया है और सैंकड़ों-हजारों श्रमिकों के रोजगार को हाशिये पर धकेल दिया है। सरकारी नीति बीमार उद्योगों के पुनर्जीवन की संभावनाओं को अवरुद्ध करती है।

31. दूसरे, प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति उत्पन्न करने के नाम पर अर्थ व्यवस्था के लगभग सभी क्षेत्रों, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों के साथ-साथ भारी संख्या में स्वदेशी उद्योग भी सम्मिलित हैं और विशेष रूप से परिष्कृत सामान के आयातों का उदारीकरण किया जा रहा है।

32. देश में तेल के उत्पादन में 72 प्रतिशत स्वदेशी उपभोक्ता स्तर से 44 प्रतिशत तक चौंका देने वाली सीमा तक कमी करके महत्वपूर्ण पेट्रोलियम क्षेत्र को विदेशी पूंजी के लिये खोल देना एक घातक संकेत है। इससे सम्बन्धित क्षेत्र में स्वदेशी क्षमता का क्षरण होगा। कोयला क्षेत्र की भी यही स्थिति है। कोयले के समृद्ध भण्डार होने पर भी देश कोयले का आयात कर रहा है।

33. तीसरे, जूट, कपड़ा इत्यादि परम्परागत क्षेत्र के उद्योग पर उदारीकरण की नीति का सर्वाधिक दुष्प्रभाव पड़ा है और वे भूमण्डलीयकरण से उत्पन्न वातावरण में चल नहीं पा रहा। विशेष रूप से कपड़ा क्षेत्र में परम्परागत आद्योगिक इकाईयां संकटपूर्ण स्थिति को झेल रही है क्योंकि उस क्षेत्र में अनेक निर्यातोन्मुखी इकाईयां उभर रही है। इन इकाईयों में उच्चतर प्रौद्योगिक उपयोग में लाई जाती है और श्रमिकों को अत्यंत अल्प वेतन दिये जाते हैं।

बहुराष्ट्रीय निगमों को और अधिक बाजार चाहियें

34. आज तक उद्योग में जो भी विदेशी निवेश हो रहा है, वह वर्तमान उपक्रमों को हस्तगत करके तथा संयुक्त उद्यमों को खोलने के माध्यम से हो रहा है। इससे रोजगार के अवसर

नहीं बढ़े हैं। बहुराष्ट्रीय निगम भारतीय कंपनी का अधिग्रहण कर लेने के स्थान पर श्रम शक्ति को तर्क संगत बनाने के नाम पर उसके श्रमिकों पर दबाव डालते हैं और उनके ट्रेड यूनियन अधिकारों की धज्जियां उड़ाते हैं। इसका श्रमिकों तथा रोजगार पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इस संदर्भ में टामको द्वारा अधिगृहीत हिन्दुस्तान लीवर, जिल्लट द्वारा अधिगृहीत ब्लेड निर्माता कम्पनी मैसर्ज मल्होत्रा, कोका कोला द्वारा अधिगृहीत मैसर्ज पारले गोबल्ड की उदारहणें दी जा सकती हैं। बहुराष्ट्रीय निगमों की अधिक दिलचस्पी भारतीय बाजार में है। इसकी अपेक्षा नये कारखाने लगाने तथा उत्पादन की सुविधाएं उपलब्ध कराने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं है।

35. जहां कहीं भी नये उद्यमों/इकाईयों की स्थापना हुई है– वे अधिकतर पूंजी की सघनता वाले क्षेत्र हैं और निवेश तथा उत्पादन क्षमता की तुलना में वहां कम से कम रोजगार उपलब्ध कराया जाता है। यहीं पर बस नहीं, अनेक उद्योगों में यूनियनकृत श्रम शक्ति के और तथाकथित अधिकारियों के मध्य व्याप्त संतुलन गम्भीर रूप से गैर–यूनियनकृत श्रम शक्ति के पक्ष में होता है। नयी इकाईयों में यह रुझान विशेष रूप से पाया जाता है। ये इकाईयां उदारीकरण के वर्षों में अस्तित्व में आई है।

भारत को अ–उद्योगीकरण का सामना

36. इन नीतियों के समग्र रुझान को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है: उदारीकरण की नीति स्वदेशी औद्योगिक आधार का क्षरण करने का काम कर रही है। शुद्ध अर्थों में, औद्योगिक क्षेत्र की उत्पादन गतिविधियों का विकास नहीं किया जा रहा। जो भी नये उद्यम अस्तित्व में आ रहे हैं उन्हें रोजगार सर्जन के मामले में निष्प्रभावी बनाया जा रहा है। बीमारी, कामबंदी तथा अनेक सार्वजनिक इकाइयों को अन्यायोचित प्रतिस्पर्धा के माध्यम में बाजार से निकाल बाहर किये जाने के कारण वे घाटे में चलने लगती हैं और इस प्रकार उनमें उत्पादन क्षमता का विकास हो ही नहीं पाता। दूसरी ओर भारतीय बाजार बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पादों के लिये आखेट (शिकारगाह) बन गया है। भारतीय बाजार भारत की धरती पर रोजगार अवसरों को उपलब्ध कराने के मूल्य पर मंदे से पीड़ित तथा आवश्यकता से अधिक क्षमता वाली पश्चिमी अर्थ व्यवस्थाओं को राहत देने की पेशकश कर रहा है।

इस नीति के विरुद्ध संघर्ष

शक्ति तथा दुर्बलताएं

37. भारत के श्रमिक वर्ग ने एकजुट होकर कोष/बैंक निदेशित उदारीकरण की नीति के विरुद्ध संघर्ष किया है और वह श्रमिक संघों के प्रभाव क्षेत्र के बाहर अपने संघर्ष के मंच का विस्तार करके जनता के सभी वर्गों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर चुका है। उदारीकृत

सत्ता के पिछले पांच वर्षों में चार देश व्यापी हड़ताली संगठित की जा चुकी हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय श्रमिक वर्ग ने सभी प्रकार के हमलों तथा दमनात्मक कार्रवाईयों का सामना करते हुए अनेक क्षेत्रवार तथा उद्योगवार संघर्ष की कार्रवाईयां की हैं।

38. उल्लेखनीय है कि संघर्ष के मंच का विस्तार स्वयं संघर्ष की प्रक्रिया में ही हुआ है। राष्ट्रीय जन संगठन मंच का गठन छात्रों, युवाओं, महिलाओं, किसानों, तथा अन्य व्यवसायों से सम्बन्धित जन संगठनों को संघर्ष में सम्मिलित करने के लिये ही गठित किया गया था। श्रमिक वर्ग जनता के अन्य वर्गों को संघर्ष में सम्मिलित करने की प्रक्रिया का नेतृत्व कर सका। इसकी भारी आवश्यकता अनुभव की जा रही थी।

39. विश्व बैंक ने भी अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया है कि उन सभी देशों जहां विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के निदेशों पर संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम का समारम्भ किया गया था, में से भारत के श्रमिक वर्ग ने ही उसका सर्वाधिक प्रतिकार किया है। यह तथ्य भी अपने स्थान पर बना हुआ है कि श्रमिक वर्ग के नेतृत्व में तथाकथित उदारीकरण की नीति के विरुद्ध भारतीय जनता के संघर्ष के फलस्वरूप तथाकथित सुधारों की गति को मद्धम किया जा सका है। यद्यपि उन्हें पूर्ण रूपेण विपरीत मोड़ नहीं दिया जा सका है।

40. किन्तु इसके साथ ही हमें स्वीकार करना होगा कि हमारे संघर्ष में अभी भी कुछ विशेष प्रकार की दुर्बलताएं हैं। यह संघर्ष सम्पूर्ण श्रमिक वर्ग को अपनी पंक्तियों में नहीं ला सका है और श्रमिकों की विशाल संख्या अब भी इस संघर्ष में नहीं कूदी। दूसरे, सभी जन संगठनों को सक्रिय नहीं किया जा सका और सभी सम्बद्ध पक्षों पर नीति का नकारात्मक प्रभाव पड़ने पर भी नयी आर्थिक नीति के विरुद्ध संघर्ष में उसकी सम्पूर्ण शक्ति को झोंका नहीं गया। तीसरे, श्रमिक वर्ग द्वारा की गई हड़ताल की कार्रवाई तथा अन्य प्रकार के आंदोलनों को प्रभावशाली ढंग से किसानों के साथ जोड़ा नहीं गया ताकि श्रमजीवी जनता को अधिक केन्द्रित किया जा सकता, संघर्ष और शक्तिशाली तथा विस्तृत होता और वास्तव में ही प्रभावशाली सिद्ध होता।

41. इन दुर्बलताओं का देश राजनीतिक परिदृश्य पर भी प्रभाव पड़ा जो स्वाभाविक ही है। यद्यपि देश में पिछले चुनाव नयी आर्थिक नीति के विरुद्ध चले निरंतर संघर्ष/आंदोलन की पृष्ठभूमि में सम्पन्न हुए थे तथापि चुनाव परिणामों से उदारीकरण विरोधी मंच के पक्ष में ध्रुवीकरण में वांछित परिवर्तन प्रतिबिम्बित नहीं होता। यद्यपि चुनावों में कांग्रेस को पराजय का मुंह देखना पड़ा था। चुनावों के बाद के परिदृश्य में श्रमिक वर्ग के समक्ष स्थिति का विशेष द्विभाजन नहीं हुआ– उदारीकरण की नीति के विरुद्ध संघर्ष करने की आवश्यकता है और साम्राज्यवाद की शक्ति को भी धाराशाही करना आवश्यक है।

42. और इन दुर्बलताओं ने नयी आर्थिक नीतियों के विरुद्ध जारी संघर्ष को पठार जैसी स्थिति में ला पटका है और इस स्थिति से बाहर निकल आने की आवश्यकता है। इसके लिये नयी

नीति के विरुद्ध प्रतिकारात्मक संघर्ष में किसानों तथा श्रमजीवी जनता के सभी वर्गों को सम्मिलित करना अत्यावश्यक है।

सामूहिक सौदेबाजी के संघर्ष पर प्रभाव

43. उदारीकरण की प्रक्रिया के चलते औद्योगिक सम्बन्ध प्रबन्धन के ढांचे तथा सामूहिक सौदेबाजी की संरचना में भी विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं।

44. उद्योगों के संगठित क्षेत्र विशेष रूप से इस्पात, कोयला, बी एच ई एल, उर्वरक, सीमेंट, चीनी, एयर लाइन्स, बैंकिंग, ऊर्जा क्षेत्र, तेल इत्यादि में उसके बहु-इकाई उत्पादन केन्द्र पूरे देश में फैल रहे हैं, में राष्ट्रीय स्तर पर उद्योग आधारित समझौता बातचीत के मंच का एक ढांचा है। इस ढांचे के अन्तर्गत पिछले अनेक वर्षों के संघर्ष के फलस्वरूप प्राप्त किये गये वेतनों तथा अन्य सेवा लाभों का निर्धारण होता है। यद्यपि इस ढांचे के अन्तर्गत एक विशेष उद्योग की विभिन्न इकाईयों में कार्यरत श्रमिकों के वेतनों में समानता लाई जा सकी है और श्रमिक संघों के प्रयासों से वहां विभिन्न शक्तिशाली श्रमिक संघ एवं महासंघ अस्तित्व में आ गए हैं। उदारीकरण के पिछले परिदृश्य में नियोजकों का वर्ग राष्ट्रीय स्तर के उद्योग आधारित इन मंचों की कार्रवाईयों को समाप्त करने: वेतन वथा श्रमिकों के लिये अन्य सेवा लाभों पर इकाई स्तर की वार्ताओं का विकेन्द्रीयकरण करने के लिये बहुत सक्रिय हो उठा है।

45. सार्वजनिक क्षेत्र के उर्वरक उद्योग में पहले ही कुछ तो अत्यंत लाभ अर्जित करने वाली इकाईयां हैं, वे उर्वरक उद्योग के राष्ट्रीय मंच से अलग हो गई हैं और उन्होंने पृथक इकाई स्तरीय वार्ताएं की हैं जबकि शेष उर्वरक इकाईयों को घाटे पर चलने के नाम पर वेतन संशोधन से बाहर रखा गया है। सीमेंट उद्योग में भी कुछ ऐसे मामले हुए हैं और कुछ अन्य क्षेत्रों में भी इसी प्रकार की बातें हो रही हैं। दुर्भाग्यवश नियोजकों की इस प्रकार की कार्रवाईयों का इकाई स्तर पर सम्बन्धित श्रमिक संघों/श्रमिकों द्वारा अधिक प्रतिरोध नहीं किया जाता और वे केवल राष्ट्रीय स्तर पर औपचारिक रूप से विरोध व्यक्त करके ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। शायद इस्पात उद्योग ही इसका एकमात्र अपवाद है जहां बीमारी के नाम पर इस्पात उद्योग को वेतन समझौते से इसको बाहर रखने के प्रयासों का श्रमिक आंदोलन द्वारा प्रतिकार किया जा सका है।

विचारधारात्मक हमले

46. उदारीकरण की नयी आर्थिक नीति को केवल आर्थिक मोर्चे पर ही लागू नहीं किया गया किन्तु इसके लिये प्रचार माध्यमों के द्वारा एक सशक्त अभियान चलाया गया है और

प्रत्येक ढंग की सामग्री इसके प्रचारार्थ प्रकाशित कराई गई है। जनता के सभी वर्गों में इसका शाखा विस्तार हुआ है। श्रमिक वर्ग तथा मानवीय मूल्य भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। इसके द्वारा व्यक्तियों के दृष्टिकोण में मौन परिवर्तन होने लगा है और इसका प्रभाव समाज के सभी वर्गों में फैलने लगा है। "जिसकी लाठी उसी की भैंस" तथा "किसी भी मूल्य पर सफल होने" और "स्वार्थ आधारित प्रस्तुतिकरण" को मूल शब्दों के रूप में प्रतिपादित करने का प्रयास किया जा रहा है। और यह अभियान पूर्व सोवियत संघ तथा पूर्वी युरोप में समाजवाद के पराभव की पृष्ठभूमि में चलाया जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप समाजवादी नैतिक मूल्यों के प्रति भ्रांत धारणाएं उत्पन्न हुई हैं और जनता में इन मूल्यों के चिरन्तन होने के प्रति संशय की स्थिति बना दी गई है। साधारण जन इस मिथ्या प्रचार अभियान में बहने लगे हैं।

47. एक और संवत्ति श्रमिक आंदोलन की कार्यसूची में उल्लिखित कार्यों से निपटने में गैर सरकारी संगठनों का कुकुरमुत्तों की भांति उभर आना। ये लोग वर्तमान परिदृश्य में श्रमिक संघों के अप्रासंगिक होने का प्रचार करते हैं। ये गैर सरकारी संगठन असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की समस्याओं को उठाने का स्वांग रचते हैं और विशाल स्तर पर मीडिया में प्रचार पाते हैं। वे स्वयं को ट्रेड यूनियन कार्रवाईयों का विकल्प बनाना चाहते हैं। इस प्रकार के संगठनों को सरकार का सक्रिय, संरक्षण प्राप्त होता है। उनमें से अनेक विदेशी धन पर चलने वाले संगठन हैं और वे डब्ल्यू टी ओ (विश्व व्यापार संगठन) के साथ "सामाजिक अनुच्छेद" को जोड़ कर अपने विचार परोसते है। इस गैर सरकारी संगठनवाद ने भी श्रमिक आंदोलन के भीतर अनुप्रवेश कर लिया है और इसका कारण असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों का यूनियनकरण नहीं किये जाने की दुर्बलता है।

48. बाजार-संचालित आर्थिक नीति के विचारधारात्मक हमले का मूल उद्देश्य श्रमिक वर्ग को उसकी वर्गीय अवधारणा से दूर ले जाना, सामूहिकतावाद के स्थान पर व्यक्तिवाद की प्रतिस्थापना करना है। क्योंकि श्रमिक वर्ग ही पूंजी के हमलों का प्रतिकार करने वाली एक सक्षम शक्ति है, इसलिये वे लोग इसे विभाजित रखना चाहते हैं।

संघर्ष में विकल्प उभारा जाना चाहिये

49. भारत में श्रमिक वर्ग का आंदोलन अपनी सभी प्रकार की सीमाएं होने पर भी संघर्ष के एक विशाल मंच का निर्माण करने में सक्षम रहा है। किन्तु अब भी इस संघर्ष को ठोस रूप देना शेष है और हमें इन नीतियों के लिये वैकल्पिक नीतियां भी तैयारी करनी होगी जो जन मानस को छू सकें और जिनके प्रभावाधीन देश भक्त जनता विशाल संख्या में देश की आर्थिक सम्प्रभुता तथा आत्मनिर्भर अर्थ व्यवस्था को धाराशायी करने के प्रयासों के विरुद्ध चल रहे संघर्ष में खिंची चली आए।

50. इस आत्म विनाशकारी नीति का प्रतिकार करने के लिये हमारे आंदोलन को आत्मनिर्भर विकास का विकल्प अवश्य प्रस्तुत करना होगा। सामंती भूमि सम्बन्धों से लदी अर्थ व्यवस्था की वर्तमान संरचना की जड़ों पर वैकल्पिक सुधार कार्यक्रमों का प्रहार करना चाहिये। यह तथ्य नहीं है कि देश के पास आवश्यक संसाधनों का अभाव है। इसके विपरीत हमारे देश में विशाल संसाधनों की भारी सम्भावनाएं विद्यमान हैं। ग्रामीण भारत में सामंती-भूमि सम्बन्धों ने उनके मार्ग को अवरुद्ध कर रखा है। उसका प्रभाव औद्योगिक अर्थ व्यवस्था पर भी पड़ रहा है। आमूल चूक भूमि सुधार ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में आय की वर्तमान प्रणाली में पर्याप्त परिवर्तन लाकर वैकल्पिक सुधार ला सकते हैं। संसाधन जुटाने के अन्य संसाधन भी हैं। यह काम काले धन का पता लगा कर, कार्पोरेट तथा इजारेदार गृहों द्वारा लौटाए नहीं गए 4000 करोड़ रुपये वसूल करके, इजारेदार गृहों पर कर लगा कर, समृद्ध भूमि पतियों को कर जाल में लाकर किया जा सकता है। इससे अवश्यमेव नयी आर्थिक नीतियों के विरुद्ध हमारे संघर्ष में नयी शक्ति तथा आत्मविश्वास का संचार होगा।

वैकल्पिक नीति के अभाव का दुष्प्रभाव

51. ठोस वैकल्पिक नीति उपलब्ध कराने में हमारी विफलता के चलते नयी आर्थिक नीति के विरुद्ध हमारा संघर्ष पठार (अर्थात् निश्चलता) जैसी स्थिति में पहुंच गया है। इससे ऐसी प्रतिगामी नीतियों को परास्त करने की अवधारणा भी क्षीण पड़ने लगती है। ऐसी स्थिति बहुराष्ट्रीय निगमों की पक्षपाती उदारीकरण की वर्तमान नीति के मूल ढांचे में रह कर समझौते करने की भावना को उत्पन्न करती है। इस भावना की अभिव्यक्ति संघर्ष के मंचों से भी यदाकदा होने लगती है और संयुक्त संघर्षों के मामले में एक प्रकार की झिझक सी दिखाई देने लगती है। यह रुझान श्रमिक वर्ग के सम्पूर्ण आंदोलन की साख पर भी अपना दुष्प्रभाव डालता है और नयी आर्थिक नीति के विरुद्ध संघर्ष में हमारी पहचान भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहती। श्रमिक आंदोलन का एक बड़ा भाग यह मान बैठा है कि नयी आर्थिक नीति का कोई विकल्प नहीं है। यह विषाणु श्रमिक आंदोलन के प्रति श्रमिकों की प्रतिबद्धता को चट कर जाता है।

52. संक्षेप में, विचारधारात्मक अनिश्चय की इस पृष्ठभूमि में व्यक्तिवाद, तथाकथित उद्यम स्तरीय यूनियनवाद, अलग-थलग रहने के विचार इत्यादि नकारात्मक पक्ष उभरने लगते हैं और सामान्य श्रमिकों में व्याप्त भ्रांतियां से लाभ उठाकर ये रुझान श्रमिक आंदोलन के भीतर पनपने लगते हैं। यूनियन की कार्य पद्धति का जनवादीकरण करने तथा यूनियन के कार्यों एवं संघर्ष की नीति बनाने जैसे मामलों में सामान्य श्रमिकों को सहभागी नहीं बना सकने की हमारी विफलता हमारी सांगठनिक दुर्बलताएं हैं। हम विचारधारात्मक हमले का प्रतिकार करने के लिये हम श्रमिकों की जागरूकता के स्तर को भी ऊंचा नहीं कर सकें हैं और इस संघर्ष को

ट्रेड यूनियनवाद के क्षितिज में आगे नहीं काम करने की हमारी सामंती शैली आंदोलन के भीतर ऊपर से नीचे तक संवाद के मार्ग बड़ा अवरोधक है और इससे विपरीत विचारधारा की श्रमिक आंदोलन के भीतर पनपने के लिये उर्वर भूमि मिल जाती है और उसका संक्रमण श्रमिकों में होने लगता है।

53. आर्थिक नीति में पूर्ण परिवर्तन लाना हमारा लक्ष्य है। इसके साथ ही हमें शोषक वर्ग के विचारधारात्मक शास्त्रों की धार को भी कुंद करना होगा जिनकी सहायता से वे श्रमिक वर्ग को अपने हमलों का प्रमुख लक्ष्य बनाते हैं और उसे हाशिये पर धकेलने के कुत्सित प्रयास करते हैं। यदि हम इस नीति की दशा को बदलना चाहते हैं तो हमें इस परिवर्तन के वास्तविक स्वरूप का अध्ययन करना होगा और सांगठनिक तथा विचारधारात्मक दोनों ही स्तरों पर इसका प्रतिकार करने के लिये सुसज्जित होना होगा। अत: विचारधारात्मक मोर्चे के संघर्ष का महत्व अत्याधिक हो जाता है। इस संघर्ष की श्रमिक वर्ग की सभी श्रेणियों तथा उससे बाहर विशाल स्तर पर आगे बढ़ाना होगा। इसके, लिये आंदोलन के संगठन के साथ साथ हमें अपने सांगठनिक ढांचे में भी गुणात्मक परिवर्तन होगा।

तकनीकी विकास तथा श्रमिक वर्ग के ढांचा संगठन में परिवर्तन

प्रस्तावना

यह आलेख उन परिवर्तनों का वर्णन करता है जो हम प्रौद्योगिकीय (अर्थात् तकनीकी) क्रांति के कारण श्रमिक वर्ग संरचना तथा बनावट में धीरे-धीरे ला रहे हैं।

पूंजीपति वर्ग द्वारा श्रमिक वर्ग का शोषण किया गया है या किया जाता है और इन दोनों ही वर्गों के वर्ग हित एक दूसरे के विपरीत हैं। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि श्रमिक वर्ग अपनी संरचना तथा बनावट की दृष्टि से एकरूपता लिये हुए है। श्रमिक वर्ग की संरचना के गूढ़ अर्थ हैं। एक आधुनिक उद्योग में वह (अर्थात् श्रमिक) एक अत्यंत कुशल श्रमिक हो सकता है, अर्ध-कुशल अथवा अकुशल श्रमिक जो उत्पादन प्रक्रिया में शारीरिक परिश्रम करता है, भी हो सकता है। इससे भी आगे चल कर उसमें और भी भिन्नताएं हो सकती हैं; एक उद्योग में वह स्थायी श्रमिक हो सकता है और रोजगार की कोई सुरक्षा नहीं रखने वाला अस्थायी श्रमिक भी; वह आनुबंधिक अथवा अंशकालिक श्रमिक भी हो सकता है। यही नहीं, असंगठित क्षेत्र में हमें ऐसे श्रमिक भी देखने को मिल जाते हैं, जहां एक ही नियोजक के पास 2,3 अथवा 4 व्यक्ति मिल कर काम करते हैं और ऐसे श्रमिक भी होते हैं जिन्हें स्व: रोजगार प्राप्त श्रमिक कहा जाता है जैसे रिक्शा चलाने वाला, सिर पर बोझा उठाने वाला इत्यादि। श्रमिकों की विभिन्न श्रेणियां हैं और ये सभी श्रेणियां मिल कर श्रमिक वर्ग की संरचना करती हैं।

श्रमिक वर्ग की बनावट का पक्ष उल्लेखनीय है। भारत की स्थितियों में किसान पृष्ठभूमि रखने वाले श्रमिकों की संख्या विराट है। वे दरिद्रता की खाई में धकेली जा चुकी किसान जनता के साथ सम्बन्ध रखते हैं। भले ही वे एक उद्योग में क्यों न काम करते हों, किन्तु उनकी अर्ध-किसान वाली पृष्ठभूमि शिक्षा के किसी स्तर के बिना ही बनी रहती है। अनेक उद्योगों विशेष रूप से आधुनिक उद्योग में किसान पृष्ठभूमि नहीं रखने वाले श्रमिकों

की श्रेणी भी होती है। वे शहरी पृष्टभूमि रखते हैं और उनकी कुछ शैक्षणिक उपलब्धियां भी होती हैं। अत: भारत में जहां एक ओर जूट तथा सूती कपड़ा जैसे परम्परागत उद्योग हैं वहीं दूसरी ओर इस्पात अथवा भारी इंजीनियरिंग उद्योग हैं; उन दोनों में ही कार्यरत श्रमिकों की सामाजिक पृष्ठभूमि परिलक्षित होती है। ये सभी श्रमिक परस्पर मिल कर श्रमिक वर्ग की संरचना का निर्माण करते हैं।

क्योंकि श्रमिक वर्ग एक शोषित वर्ग है और उसे सबसे बड़ा क्रांतिकारी वर्ग माना जाता है इसलिये उसकी क्रांतिकारी प्रकृति का निश्चय करने के लिये उसकी संरचना अथवा बनावट हमारे लिये प्रासंगिक बन जाती है। इसलिये श्रमिक वर्ग को संगठित करने तथा क्रांतिकारी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये श्रमिक वर्ग की संरचनात्मक संवृत्ति की समुचित समझ रखना आवश्यक है।

प्रौद्योगिकी तथा उससे सम्बन्धित उद्योग में होने वाले क्रांतिकारी परिवर्तनों एवं प्रगति के दृष्टिगत श्रमिक वर्ग की संरचना तथा बनावट में हो रहे परिवर्तन के विषय की निवेचना इस आलेख में की गई है।

वैज्ञानिक तकनीकी क्रांति

वैज्ञानिक तकनीकी क्रांति ने उत्पादन शक्तियों के विकास हेतु नये आयामों के मार्ग खोल दिये हैं तथा श्रमिक वर्ग के ढांचे व संगठनीय प्रक्रिया क्षेत्रों में परिवर्तन का मार्ग खोल दिया है।

उत्पादन प्रणाली में क्रांति का प्रादुर्भाव श्रमशक्ति से हुआ। आधुनिक उद्योग में इसकी शुरूआत श्रम साधनों से हुई। इसके बाद, औद्योगिक प्रक्रिया ने "उन्हें कई प्रकार के सचेतन व योजनाबद्ध तरीकों द्वारा प्राकृतिक विज्ञान से संबद्ध कर उपयोगी परिणामों की प्राप्ति के लिये व्यावहारिक किया। (का.मा.) श्रम के बाद, विज्ञान वह महत्वपूर्ण अंतिम सामाजिक संपत्ति है जिसे पूंजी अनुबद्ध के उद्देश्य के रूप में बदल दिया जाता है। उत्पादन से सबंद्ध सामान्य सामाजिक संपत्ति के रूप में विज्ञान व पूंजीवादी संपत्ति के रूप में विज्ञान के प्रयोग में अंतर पिछली औद्योगिक क्रांति व अब चल रही वैज्ञानिक-तकनीकी क्रांति का अंतर है आधुनिक इतिहास के बीसवीं शताब्दी के दौरान आधुनिक पूंजीवादी उद्योग में विज्ञान के वृहत प्रयोग ने श्रम प्रक्रिया व श्रमिक वर्ग के ढांचे में परिवर्तन को आवश्यक बना दिया है।

मंदी व बेरोजगारी

द्रतगति से चल रही वैज्ञानिक व तकनीकी क्रांति तथा अधिकांश आधुनिक उद्योगों में उनका प्रयोग, बहुराष्ट्रीय निगमों के रूप में ध्रुवीय स्तर पर पूंजी विस्तार के कारण विकसित

पूंजीवादी देशों में ही श्रमपरिदृश्य में परिवर्तन नहीं है अपितु उसका प्रभाव विकासशील देशों, भारत सहित पर भी पड़ा है, दूसरी ओर, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में विश्व स्तर पर आई मंदी, विशेषतया इस शताब्दी के आठवें दशक में, के कारण पश्चिमी पूंजीवादी देशों ने अर्थशास्त्र के कैन्सियन सिद्धांत का परित्याग करते हुए, सार्वजनिक क्षेत्र में अधिक निधिकरण ताकि अधिक आर्थिक गतिविधियां हों व रोजगारी बढ़े, सार्वजनिक क्षेत्रों में काट-छांट को बढ़ावा दिया जिसके फलस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र में भारी कटौती का सामना करना पड़ा। मंदी के फलस्वरूप पश्चिमी जगत व सार्वजनिक क्षेत्रों के उत्पादन में संकुचन की प्रवृति बड़े पैमाने बढ़ी। अत: दोनों ही क्षेत्रों में आई गिरावट ने गंभीर बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न की।

निजीकरण व उत्पादक संस्थानों में पुनर्निधारण तथा प्रभाव

विश्व बैंक के आदेशों के तहद भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक व्यय में कमी, सार्वजनिक क्षेत्रों में कटौती तथा निजीकरण की शुरुआत हुई। एक ओर, सार्वजनिक क्षेत्र में निजीकरण के फलस्वरूप बेरोजगारी बढ़ी, पश्चिमी एवं अन्य विकसित पूंजीवादी देशों द्वारा उत्पादन में पुनर्निधारण के फलस्वरूप भारत जैसे तृतीय विश्व के देशों में उच्च तकनीक ने कोई महत्वपूर्ण रोजगारी को बढ़ावा नहीं दिया। ठीक इसके विपरीत, उच्च तकनीकों से लैस विदेशी कंपनियों के साथ प्रतियोगिता के कारण मेजबान देशों की देशी उद्योगों को भारी नुकसान का सामना करना पड़ा जिसके कारण बेरोजगारी में और वृद्धि हुई। सेवा क्षेत्रों में श्रम का थोड़ा विस्तार अवश्य हुआ लेकिन उसमें भी वर्तमान नीति के चलते भारी काट-छांट होगी, यह तय है। सेवा क्षेत्र में लचीली श्रम शर्तें हैं जो अंशकालिक व ठेकेदारी प्रणाली, विशेषतया महिला जगत, को बढ़ावा देती हैं और अंशकालिक श्रम रोजगार विद्यमान के अंतर्गत नहीं है।

सेवा क्षेत्र का विस्तार

विकसित पूंजीवादी अर्थ व्यवस्थाओं तथा भारत जैसे देशों में, सेवा क्षेत्र की प्रधानता बढ़ रही है। मुनाफे में कमी के कारण उत्पादन में गिरावट तथा सेवाओं का विस्तार अधिक मुनाफा कमाने का निदेशों में विकल्प प्रदान करता है। यह जिस तरह पश्चिमी पूंजीवादी देशों में है जापान व भारत में भी ठीक वैसा ही है। उच्च तकनीक सेवा क्षेत्र व भारत के वित्तीय क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन ने उन्हें निवेश करने अधिक मुनाफा कमाने का विकल्प प्रदान किया है।

सेवा क्षेत्र में विस्तार तथा श्रम शक्ति में बढ़ती लचीली प्रक्रिया सेवा शर्तों में सुधार के स्थान पर उप-ठेकेदारी, अल्पकालिक, अंशकालिक व अन्य लचीली शर्तों को अपनाने

को बाध्य कर रही हैं। इस लचीले श्रम शर्तों के चलते यूनियनीकरण की प्रक्रिया के समक्ष गंभीर समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं क्योंकि उनकी सौदेबाजी करने की शक्ति कम होती जा रही है।

भारत का औद्योगिक परिदृश्य तात्कालिक तौर पर बड़े तथा छोटे बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा नियंत्रित रहेगा- उच्च तकनीक पर आधारित इन निगमों को श्रमशक्ति का प्रबंधन बाहरी श्रम के द्वारा होगा जिनमें अधिकांश महिलायें होंगी जिनकी सेवायें जरूरत पड़ने पर आसानी से समाप्त की जा सकेंगी। यह पद्धति बहुराष्ट्रीय व देशी दोनों में ही लागू होगी जो उप-ठेका प्रणाली को बढ़ावा देगी। इस कार्य के लिये कुछ कंपनियां आगे आ रही हैं जो विशिष्ट व प्रशिक्षित सेवायें प्रदान करेंगी व कर रही हैं, जिनकी सेवा शर्तें निम्न स्तर की है।

भारत में श्रम परिदृश्य

भारत में आज श्रम शक्ति विषम स्थिति में हैं। एक ओर उच्च तकनीक पर आधारित उद्योगों, जिनमें बहुराष्ट्रीय व देशीय क्षेत्र सम्मिलित हैं, जैसे इस्पात उद्योग, सार्वजनिक क्षेत्र के भेल, ओ एन जी सी अथवा निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों को तेल-रासायनिक उद्योग हैं जहां अच्छी तनख्वाह व अच्छी सेवा शर्तें उपलब्ध हैं, और दर्शाती हैं कि आधुनिक श्रमिक वर्ग का विकास हो रहा है जबकि कुछ पारम्परिक उद्योगों, जैसे कपड़ा उद्योग, पटसन उद्योग, बागवानी आदि जगहों आधुनिकीकरण का अभी अभाव है, में कठिन सेवा शर्तों व कम वेतन पाने वाले मजदूर हैं जो पारम्परिक श्रमिक वर्ग के सदृश हैं। इसके अतिरिक्त भारत में भारी अनौपचारिक उद्योग हैं जहां निम्न वेतन प्राप्त करने वाले श्रमिक हैं जिनकी सेवा पूर्णतः असुरक्षित तो है ही, अन्य सुविधायें भी उन्हें प्राप्त नहीं हैं।

तकनीकी क्रांति श्रम को विस्थापित कर रही हैं।

अद्वितीय तकनीकी विकास की क्रांति ने श्रम का स्थान मशीनों को दे दिया है। लगभग सभी क्षेत्रों में, सेवाओं व उत्पादन ऐसा हो रहा है। प्रारंभिक औद्योगिक क्रांति ने मानवीय श्रम के लिये मशीनों का निर्माण किया, उसका स्थान लेने के लिये नहीं। परन्तु आज समस्त श्रम प्रक्रिया में बदलाव आ गया है। 'नौकरी-रहित विकास' एक ऐसी प्रक्रिया है जो पश्चिमी-अर्थव्यवस्थाओं और विशेषतया जापानी अर्थव्यवस्था तथा भारतीय पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रचलित हो रहा है। हालांकि पश्चिमी देशों में अल्प साप्ताहिक सेवा अवधि, साझी सेवा जल्द अवकाश प्राप्ति आदि की प्रक्रियायें इसी नौकरी रहित प्रक्रिया के परिणाम हैं। भारत में इस पर जोर दिया जा रहा है, दोनों ही क्षेत्रों-निजी क्षेत्र व सरकारी क्षेत्र कि श्रम शक्ति में कमी की जाय, पूर्णतः स्वचालन की पद्धति लागू हों, छंटनी, पदों की समाप्ति व ऐच्छिक अवकाश योजना आदि इसी नीति के प्रमाण हैं।

इन सब कारणों पर ध्यान देने पर आधुनिक औद्योगिक प्रणाली के अंतर्गत, भारतीय श्रमिक वर्ग के ढांचागत संगठन में परिवर्तन स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगता है, विशेषतया उन औद्योगिक क्षेत्रों में जहां उच्च तकनीकी प्रक्रिया लागू हैं। बहुराष्ट्रीय व देशीय दोनों ही क्षेत्रों में भारतीय मजदूर आंदोलन को इन समस्याओं व परिप्रेक्ष्यों पर ध्यान देना पड़ेगा जिनके कारण श्रमिक वर्ग के ढांचागत संगठनों में परिवर्तन आया है।

भारतीय मजदूर वर्ग को ढांचा संगठन एक और प्रकार को परिलक्षित करता है जो तकनीकी क्रांति से संबद्ध नहीं है। ये भारतीय मजदूर वर्ग के सामाजिक, जातीय व जाति प्रथा की व्युत्पति से संबद्ध है, इस विभेदन के साथ भारतीय समाज में पुरुष-प्रधानता प्रचलन ने महिला-श्रमिकों की स्थिति को विषम व सभाग में पुरुष-प्रधानता के प्रचलन ने महिला श्रमिकों की स्थिति को विषय व अस्थिर बना दिया है। उच्च तकनीकी आधारित उद्योगों के सामानान्तर पूर्व पूंजीवादी उत्पादन संबंधों के अस्तित्व ने भारतीय श्रमिक वर्ग को बहु-ढांचा स्वरूप प्रदान किया है जो पुनः मजदूर संगठनों के समक्ष समस्याये उत्पन्न करता है।

सेवा क्षेत्र भी अतिरिक्त मूल्य का निर्माण करता है ऐसा क्षेत्र के वेतन भोगियों को औद्योगिक सर्वहारा से जोड़ता है:

सेवा क्षेत्र में अभूतपूर्व वृद्धि तथा उससे संबद्ध श्रमशक्ति ने एक नये सवाल को जन्म दिया है कि सेवा क्षेत्र में निवेशित पूंजी उत्पादकीय है अथवा नहीं दूसरा सवाल है कि इस क्षेत्र में सेवारत वेतना भोगी जो श्रम करता है वह उत्पादन है अथवा नहीं। आज के पूंजीवाद में उत्पादकीय श्रम की सीमायें उपरोक्त सवाल से गंभीर रूप से जुड़ी हुई हैं सेवा क्षेत्र में श्रमिक अपनी सेवा पूंजीपति को बेचता है व पूंजीपति उस सेवा को बाजार में उपयोगी वस्तु के रूप में बेचकर मुनाफा कमाता है अधिकांश बड़े निगमित उद्योगों में बृद्धिजीवी श्रमिक लेखाशास्त्र के लिये, कुछ परिकलक कार्य के लिये, कुछ लिपिक कार्य के लिये, कुछ प्रत्यक्ष उत्पादन के लिये रखे जाते हैं। उद्योग में इस तरह उत्पादित वस्तु को बेचकर पूंजीपति मुनाफा कमाता है अर्थात् अतिरिक्त मूल्य का सृजन करता हैं। अतः अतिरिक्त मूल्य सृजन में बुद्धिजीवी श्रमिकों की भूमिका है। सेवा क्षेत्र में श्रमिकों का शोषण तथा पूंजीपति द्वारा अतिरिक्त मूल्य को हड़पने और औद्योगिक क्षेत्र में हो रहे हड़पन से कम नहीं है। आधुनिक उत्पादन प्रणाली व विपणन की प्रक्रिया में मध्यम वर्ग बड़े पैमाने पर एक रूप में सर्वहारा वर्ग के निर्माण में सहायक हो रहा है लोगों की यह कार्यरत संख्या, जिसे साधारण तथा 'सफेद पोश' कहा जाता है, मजदूरों पर अपनी वरिष्ठता खोता जा रहा है व उच्च तकनीकी क्षेत्रों में कार्यरत श्रमिकों की तुलना में कम वेतन पाता है लगभग वेतन भोगी मजदूरों के निम्न स्तर तक पहुंच गया है। सामाजिक व आर्थिक दबावों के चलते यह बुद्धिजीवी श्रमिक सर्वहारा के साथ मिलने को बाध्य हो रहा है जिसके कारण श्रमिक ढांचे में वृद्धि हो रही है। आज

के मजदूर आंदोलन के लिये यह ढांचा रूप से विचारणीय है।

आज के श्रमिक आंदोलन का विकास उसे उग्रवादी बनाया जा सकता है बशर्ते भारतीय श्रमिक वर्ग के परिवर्तित ढांचे पर विशेष ध्यान दिया जाय व औद्योगिक दृष्टि से विकसित व विकासशील देशों में हो रहे अबाध तकनीकी विकास व पूंजी के ध्रुवीकरण के परिप्रेक्ष्य में उसे देखा जाय।

आज के श्रमिक वर्ग का क्रांतिकारी स्वरूप

अब जो गंभीर प्रश्न उठता है वह है कि श्रमिक वर्ग के ढांचा संगठन में हो रहा यह परिवर्तन मजदूर वर्ग के अंतर्निहित क्रातिकारी स्वरूप में व्यावधान डाल रहा है अथवा नहीं सेवा क्षेत्र में कार्यरत मजदूरों की बढ़ती संख्या इस क्रातिकारी रुझान को निरावृत कर रही है या नहीं। इस शताब्दी के तीसरे दशक के कुछ अन्य पश्चिमी देशों में बुद्धिजीवी वर्ग में तानाशाही ताकतों से मिलने की प्रवृति जागृत हुई थी जबकि अमेरिका, कनाडा व अन्य देशों जैसे स्वीडन, स्विजरलैंड, नार्वे आदि में उनका रुझान सामाजिक लोकतांत्रिक राजनीति व मजदूर आंदोलन की ओर हुआ था।

आज के भूमण्डलीय व निजीकरण के फलस्वरूप प्रत्यक्ष छंटनी, कार्य के घंटों में कमी आदि समस्याओं ने श्रमिक वर्ग के लिये असहनीय व गम्भीर स्थिति पैदा की है जिसके कारण पूरे विश्व में मजदूर वर्ग लड़ाकू संघर्ष की दिशा में बढ़ रहा है। 1991-1994 के दौरान केवल भारत में ही नहीं, जहां नई आर्थिक नीति के विरोध में राष्ट्रीय स्तर चार आम हड़तालों का आयोजन हुआ अपितु पश्चिमी देशों फ्रांस, जर्मनी, बेलजियम, इटली, स्पेन, पुर्तगाल, व आस्ट्रेलिया में मजदूर आंदोलनों की आंधी भभकी। इनमें से सर्वाधिक उल्लेनीय फ्रांस के श्रमिक वर्ग की 1995 दिसम्बर में शुरू हुई तीन सप्ताह की आम लड़ाकू हड़ताल है। दक्षिणी कोरिया, जहां तानाशाही का बोलबाला है, मैं दिसम्बर 1996 का अभूतपूर्व श्रमिक संघर्ष था जिसका आयोजन सरकार द्वारा बनाये गये श्रम विरोधी कानूनों के विरुद्ध हुआ। फ्रांस अथवा योरूपीय अथवा पूर्वी जहां कहीं भी ये आंदोलन हुए, श्रम सम्बद्ध समस्त घटकों ने इनमें पूरजोर भाग लिया। इन देशों में लड़ाकू आंदोलन कारियों ने पुलिस अत्याचारों का डटकर सामना किया।

विश्व के विभिन्न भागों में लड़ाकू मजदूर संघर्षों का आरंभ

वर्तमान पूंजीवाद के विरुद्ध हुय ये समस्त लड़ाकू आंदोलनों यह तार्किक ढग से सिद्ध करते हैं कि श्रमिक वर्ग के ढांचा संगठन में परिवर्तन के बावजूद उसके लड़ाकू रुझान में कोई कमी नहीं आई है। परिवर्तित भूमण्डलीय आर्थिक स्थिति में भी श्रमिक वर्ग में

अन्तर्निहित क्रातिकारी स्वरूप में कोई बदलाव नहीं हुआ है।

सोवियत ट्रटन व भूमण्डलीकरण ने श्रमिक वर्ग के लिये नये क्रांतिकारी मार्ग प्रशस्त किये हैं

अक्टूबर की समाजवादी क्रांति ने रूस के श्रमिक वर्ग के लिये नई जीवन प्रणाली सुनिश्चित की जिससे अन्य पश्चिमी पूंजीवादी देशों को भी बाध्य होकर अपने-अपने देशों के श्रमिकों को अच्छी सुविधायें प्रदान की ताकि इन देशों का श्रमिक वर्ग सोवियत के रास्ते न चल पड़े। उपनिवेशों से लूटी गई राशि का कुछ हिस्सा साम्राज्यवादी देशों ने अपने श्रमिकों के वेतन में बढ़ोतरी के रूप में प्रयोग किया ताकि उनकी जीवन क्रिया में सुधार हो सके। पूर्व सोवियत संघ के टूटने, पूंजीवाद में आया गंभीर संकट, अर्थ व्यवस्था के भूमण्डलीकरण, बड़े पैमाने पर हो रहीं स्वचलन की प्रक्रिया व निजीकरण के कारण विकसित पूंजीवादी देशों का श्रमिक वर्ग सेवा क्षेत्र के श्रमिकों समेत अपनी सरकारों व अथवा निजी पूंजीपति मालिकों से लाभ प्राप्त नहीं कर पा रहा। उसे झटका लगा है, छंटनी का शिकार हुआ है, भत्तों में कमी आई है। वह ऐसी स्थिति में है जहां उसे धकेल दिया गया है, जिसमें वह आक्रामक पूंजीवादी रुझानो के विरुद्ध क्रांतिकारी विरोध करने को तत्पर है। ये संघर्ष अंतर्राष्ट्रीय एकात्मकता को बांधने में तागे का कार्य करेंगे।

क्रांतिकारी स्वरूप प्रकट हो रहा है

तृतीय विश्व के देशों के उत्पीड़ित श्रमिक वर्ग के साथ विकसित पूंजीवादी देशों के श्रमिक वर्गों में अन्तर्निहित क्रांतिकारी स्वरूप दृष्टिगोचर हो रहा है जो पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध है।

तथ्यों का विकास कुछ लोगों द्वारा प्रस्तुत इस सिद्धांत का पूर्णत: खंडन करता है कि श्रमिक वर्ग का विलोप हो रहा है और सिद्ध करता है आज के श्रमिक वर्ग अपने क्रांतिकारी स्वरूप से पूर्णत: ओतप्रोत हैं जिसे कुछ लोग झुठिलाना चाहते हैं। ठीक इसके विपरीत, यह नवीन क्रातिकारी उत्साह के साथ उभर रहा है। कहीं धीमे रूप में तो कहीं वस्तुनिष्ठ परिस्थितियों के अनुरूप।

वर्तमान संकटकाल के दौरान भारतीय श्रमिक आंदोलन को वर्तमान क्रातिकारी उभार का अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिये ताकि क्रातिकारी मजदूर आंदोलन का मार्ग और अधिक सुदृढ़ हो।

सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा पर्यावरण

1. विश्व भर में श्रमिक वर्ग विभिन्न निर्माता (मैन्युफेक्चरिंग) प्रक्रियाओं की जबरदस्त प्रगति के फलस्वरूप उत्पन्न स्वास्थ्य तथा सुरक्षा की गंभीर समस्याओं को झेल रहा है। उद्योग द्वारा हजारों प्रकार के कच्चे माल का उपयोग किया जाता है और इसकी संख्या में चौंका देने वाली सीमा तक उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जा रही है। औद्योगिक उत्पादों के प्रति व्यक्ति उपभोग में तीव्र वृद्धि के चलते यह समस्या अवश्यमेव और गंभीर हो जाएगी। इसका शुद्ध परिणाम प्रचुर उपयोग, तथा मनुष्य द्वारा निर्मित-कृत्रिम सामग्री द्वारा प्राकृतिक सामग्री के प्रतिस्थापन के चलते खतरनाक रसायनों के प्रीावन के रूप में निकलता है। अंतिम सामग्री अनेक स्थितियों में कैंन्सर जैसे रोग उत्पन्न करने का कारण बनती है और कुछेक रसायनों में रेडियोधर्मी अवयव होते हैं।

2. उद्योगों के आकार तथा क्षमताओं में निरंतर वृद्धि होती चली जा रही हैं और विशाल उत्पादन प्रक्रिया का लाभ उठाया जा रहा है किन्तु यदि यह एक निर्माता उद्योग है तो उसके हिस्से-पुर्जों का उत्पादन कार्य हजारों-झुग्गी-झोपड़ियों में स्थानांतरित हो जाता है। लघु एवं गृह आधारित उत्पादन केंद्र कार्य संचालन, रख-रखाव तथा निस्सारी तत्वों को ठिकाने लगाने के कार्य अनेक खतरे उत्पन्न कर रहे हैं। ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में आवासीय ढांचे में परिवर्तन ने जलती में तेल का काम दिया है तथा यह संवृत्ति स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के लिए और भी चिंता का कारण बन गई है।

3. श्रमिक वर्ग क्योंकि उत्पादन प्रक्रिया की अग्रिम पंक्ति में होता है, इसलिए सभी प्रकार के व्यावसायिक खतरों का प्रभाव उस पर पड़े बिना नहीं रह सकता और वह उन सभी खतरों का सर्वाधिक शिकार होता है। श्रमिक संघों के क्षेत्रों में इस प्रश्न पर पहले ही जागरूकता आ रही है और विकसित देशों में श्रमिक वर्ग ने अपने-अपने प्रबंधनों को यदि सभी स्थानों पर नहीं तो कम से कम कुछेक औद्योगिक क्षेत्रों में सुरक्षात्मक उपाय करने पर विवश कर दिया है! किन्तु विकासशील देशों में औद्योगिक मंदे क स्थिति तथा घोर आर्थिक संकट ने श्रमिक वर्ग की स्थिति को अत्यंत क्षीण बना डाला है और वह असहाय होकर यह सब देखने पर विवश है अनेक मामलों में यह वह कामकाजी स्थलों में सुरक्षात्मक उपाय करने के लिए

प्रबंधन पर दबाव डालने की स्थिति में भी नहीं है।

4. भारत का श्रमिक आंदोलन सर्वप्रथम औद्योगिक बीमारी, कामबंदी, छंटनी, वेतन समझौतों जैसी गंभीर कार्यसूची के बोझ तले दबा हुआ है और ऊपर से सत्ताधार वर्ग तथा सत्तासीन सरकार की ओर से किये जाने वाले अनेक प्रकार के हमले। इस पर भी श्रमिक संघ इस महत्वपूर्ण मुद्दे से कन्नी नहीं कतरा सकते क्योंकि इसका दुष्प्रभाव भारत में करोड़ों श्रमिकों तथा उनके परिवारीजनों पर पड़ रहा है।

समस्या

5. स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा पर्यावरण पर भारत में आयोजित तेरहवीं विश्व कांग्रेस ने इस समस्याओं के साथ संबंध रखने वाले अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों की ओर ध्यान दिलाया था। आइ एल ओ की रिपोर्ट में रहस्योद्घाटन किया गया था कि औद्योगिक दुर्घटनाओं के कारण प्रति वर्ष 12 करोड़ श्रमिक काम के समय घायल हो जाते हैं। उनमें से 20 लाख श्रमिकों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ जाता है। इस विश्व में सड़क यातायात से संबंधित दुर्घटनाओं में मारे जाने वाले लोगों की संख्या 150 लाख से कम नहीं होगी।

6. भारत में तो दुर्घटनाओं की दर उससे कहीं ऊंची है। हमारे यहां कारखानों, खदानों, गोदियों, बागों, रेल, सड़क इत्यादि में मारे जाने वाले श्रमिकों की संख्या अत्यंत विशाल होती है। सड़क में प्रति 1000 वाहनों के पीछे घातक दुर्घटनाओं की दर भारत में जापान की अपेक्षा 21 गुना अधिक तथा अमरीका की अपेक्षा 17 गुणा अधिक होती है। खदान में यदा कदा दुर्घटनाएं होती रहती हैं। जहां भारी संख्या में श्रमिक मरते हैं, इसके अतिरिक्त छतों से गिरने अथवा भूमि के धंसने जैसी दुर्घटनाओं के चलते भी असंख्य लोग मारे जाते हैं या घायल होते हैं। यहां तक कि सार्वजनिक क्षेत्र में श्रमिकों ने कुछ विरोध अवश्य किया है किन्तु वह भी स्वत: स्फूर्त ही है। हमारे सार्वजनिक क्षेत्र के इस्पात संयंत्रों में वर्ष 80-100 श्रमिक मारे ही जाते हैं, जिसके चलते संयंत्रों में मृतकों के परिवारों को दी जाने वाली राशि का प्रावधान वार्षिक बजट में किया जाता है। इस्पात उद्योग में सुरक्षा संबंधी खतरों का सर्वाधिक शिकार संविदा (अर्थात् ठेका) श्रमिक होते हैं, उन्हें अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता है। निर्माण उद्योग में कार्यरत श्रमिकों की शोचनीय स्थिति का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। यहां तक कि भारत सरकार भी निर्माण उद्योग में होने वाली दुर्घटनाओं, मरने तथा घायल होने वाले श्रमिकों की संख्या का रिकार्ड रखने की आवश्यकता अनुभव नहीं करती। देश की स्वतंत्रता के 50 वर्ष पश्चात् भी स्थिति है। निर्माण उद्योग में दुर्घटनाओं के कारण करने वाले श्रमिकों की संख्या के संबंध में कुछ गैर सरकारी अनुमान लगाए गए हैं जिससे पता चलता है कि उनकी संख्या वर्ष में इतनी अधिक अर्थात 10,000 तक हो सकती है। गैर कोयला खदानों, बिजली, गोदियों, रेलवे, बागानों इत्यादि में भी दुर्घटनाएं होती है। यदि इनकी गिनती

एक साथ की जाए तथा समाचार पत्रों में उसका प्रकाशन हो जाए तो वह पूरे देश को हिला कर रख देने के लिए पर्याप्त होगा।

7. असंगठित क्षेत्र तथा लघु उद्योगों में वस्तु स्थिति का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। भारत सरकार तथा राज्यों का श्रम विभाग केवल यह तर्क देकर अपने दायित्व से पिंड छुड़ा लेता है कि संबंधित इकाईयां कारखाना अधिनियम के अंतर्गत नहीं आतीं। उद्योग की 70 लाख से अधिक लघु इकाइयों के श्रमिकों को उन स्थितियों में काम करना पड़ता है जो 18वीं शताब्दी के लिए उपयुक्त थीं। लघु तथा असंगठित क्षेत्र में लगे श्रमिक असुरक्षित कामकाजी स्थितियों में काम करते हैं, किन्तु वे किसी संरक्षण की अपेक्षा नहीं कर सकते अथवा उनके कामकाजी स्थलों में अत्यधिक व्यावसायिक खतरे होते हैं।

8. पत्थर खदानों ईंट के भट्टों, नमक के खेतों, चूना जलाने, पत्थर काटने तथा पालश करने, फैरस तथा गैर फेरस फाउंडरियों, माचिस तथा पटाका कारखानों, आभूषण उद्योगों, चर्म उद्योग, शीशा पिघलाने, माइका खदानों, पलास्टिक मौल्डिंग, चाय के बागों, मोटर गैरजों इत्यादि में कार्यरत करोड़ों श्रमिक व्यावसायिक रोगों की उच्चतर दर का निरंतर शिकार होते हैं। उनके लिये न सामाजिक सुरक्षा और न ही किसी प्रकार की चिकित्सकीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है जिसके चलते किसी समय उनका दु:ख हलका हो सके। चिकित्सा पर आने वाला भारी भरकम खर्च उन्हें अपना उपचार न कराने पर ही विवश कर देता है, वे औपचारिक डाक्टरी उपचार से दूर भागते हैं और चुपचाप मृत्यु की गोद में चले जाते हैं।

नयी नीति नये आयाम

9. नयी आर्थिक नीति के तत्वाधान में मुक्त अर्थ व्यवस्था के लागू होने के साथ यह समस्या और भी विकराल रूप धारण कर गई है। विकसित देश अपनी प्रदूषण फैलाने वाली उत्पादन प्रक्रियाओं को भारत जैसे विकासशील देश में स्थानांतरित कर रहे हैं। खनिज सम्पदा की दृष्टि से समृद्ध देशों से कच्चे माल का आयात करने की अपेक्षा उनका उद्देश्य कच्चे माल को प्राथमिक उत्पादों में बदलना तथा उसके पश्चात् अपने कारखानों में इनका उपयोग करने के लिए अंतरित करना है ताकि उससे अतिरिक्त मूल्य के परिष्कृत उत्पाद तैयार किये जा सकें इस ढंग से से वे अपने देश में पर्यावरणीय खतरों का निराकरण कर सकें और व्यावसायिक रोंगों के प्रस्फुटन से बच सकें। उनके अपने देश में जिस उत्पादन प्रक्रिया अथवा प्रौद्योगिकी पर प्रतिबंध लगा हुआ है, उसे वे बाई-बैंक समझौते तथा प्रौद्योगिकीय हस्तांतरण इत्यादि के अंतर्गत विकासशील देशों में स्थानांतरित कर रहे हैं। निर्यात प्रसंस्करण अंचलों में विशेष रूप से और व्यावहारिक रूप से संम्बधित देश का अपना कानून नहीं चलता। यह एक वास्तविकता है।

10. हाल ही में हजारों लघु तथा गृह आधारित उद्योगों के क्षेत्र में उत्पादन प्रक्रिया

स्थानांतरित कर देने का व्याकुल कर देने वाला रुझान चल रहा है। उद्योगपति कारखाना अधिनियम, प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम, कचरा निपटान अधिनियम, न्यूनतम वेतन अधिनियम, श्रमिकों का क्षतिपूर्ति अधिनियम इत्यादि के अंतर्गत अपने ऊपर आने कानूनी दायित्वों से पिंड छुड़ा लेने के लिए यह विधि अपना रहे हैं। इस प्रकार एक ओर जहां पर वे अपने कानूनी दायित्वों से पूर्णतया मुक्त हो रहे हैं वहीं दूसरी ओर न्यूनतम श्रम लागत पर अपना उत्पादन कार्य करा रहे हैं। वर्ष 1972 में 17,58, 218 औद्योगिक इकाईयां थीं जिनकी संख्या वर्ष 1995 में बढ़कर 70 लाख तक पहुंच गई। इससे परिवर्तन के रुझान का संकेत मिलता है। पहले राज्य का दर्शन कल्याणकारी राज्य की स्थापना हुआ करता था, उसका स्थान अब बाजार अर्थव्यवस्था ने ले लिया है, फलस्वरूप व्यावसायिक एवं औद्योगिक गृहों के लिये यह वरदान सिद्ध हुआ है, उनका नैतिक उत्साह बढ़ा है और वे कम श्रम लागत पर भारी-भरकम लाभ अर्जित करने की ओर प्रवृत हो गए हैं। केवल श्रमिकों को कानून द्वारा प्रदत्त न्यूनतम सेवा लाभ देने से इंकार करने तथा सभी प्रकार की पर्यावरणीय आवश्यकताओं तथा सुरक्षा नियमों की अवहेलना करके ही इसे (भारी भरकम लाभ अर्जित करने की लालसा) संभव बनाया जा सकता है।

11. भारतीय उद्योगों द्वारा विषाक्त रसायनों का अंधाधुंध उपयोग हमारी चिंता का एक महत्वपूर्ण कारण हैं। आइ एल सी की रिपोर्ट के अनुसार जिन रसायनों का नियमित उपयोग होता है, उनकी संख्या 40,000 से कम नहीं है, इसके चलते शरीर की कोशिकाओं एवं स्नायु तंत्र सहित मानव शरीर के अन्य अंगों को गंभीर क्षति पहुंचती है। आइ एल ओ के अध्ययन से यह भी पता चला है कि विश्व में प्रति वर्ष इन विषाक्त रसायनों से 30 लाख से अधिक लोग पीड़ित होते हैं। भारत में विषाक्त रसायनों से 30 लाख से अधिक लोग पीड़ित होते हैं। भारत सहित अन्य सभी विकासशील देशों में इससे पीड़ित होने वाले लोगों की संख्या कहीं अधिक हैं।

12. क्योंकि हमारे देश में रोजगार का भयानक संकट चल रहा है, इसलिए कोई भी श्रमिक इन विषाक्त रसायनों के उपयोग से शरीर पर घातक प्रभाव पहले के तथ्य से परिचित एवं जागरूक होने पर भी व्यक्तिगत रूप से इसका प्रतिकार नहीं कर सकता।

13. इन अधिकांश उद्योगों में महिलाएं तथा बच्चे काम करते हैं। इस प्रकार उनके कार्य संचालन से लाखों लोग प्रभावित होते हैं। इसके दुष्परिणाम स्वरूप वे अपंगता, अक्षमता तथा अन्य व्यावसायिक रोगों का शिकार हो जाते हैं।

14. बहुराष्ट्रीय निगमों ने तो अपने विषाक्त तथा रेडियोधर्मी कचरे को ठिकाने लगाने के मैदान के रूप में भी विकासशील देशों का चुनाव कर लिया है। इससे हमारी भूमि, हमारी नदियां तथा समुद्री जल विषाक्त हो रहा है और सम्पूर्ण जनता के स्वास्थ्य पर इसका दूरगामी घातक प्रभाव पड़ रहा है।

श्रमिक संघों का दृष्टिकोण

15. अभी भी हमारे अधिकांश श्रमिक संघ बढ़ती औद्योगिक दुर्घटनाओं तथा व्यावसायिक रोगों के प्रति चिंता व्यक्त नहीं करते। यूनियन गतिविधियों में अधिकांश समय रोजगार सुरक्षा तथा उद्योग के चलते रहने संबंधित आर्थिक मांगों तथा अन्य सेवा लाभों जैसे मुद्दों पर व्यतीत होता है।

कुछेक (अर्थात् गुट्ठी भर) श्रमिक संघ ही अपना कुछ समय सुरक्षा स्वास्थ्य तथा पर्यावरण जैसे मुद्दे के लिए निकालते हैं और अपने सचिवमंडलों की बैठकों की कार्यसूची में इसे सम्मिलित करते हैं। बहुत कम श्रमिक संघों ने इन समस्याओं के अध्ययन हेतु उप समितियों का गठन किया है। शायद ही इस संबंध में उनके द्वारा प्रबंधन को ठोस सुझाव अथवा मांगें प्रस्तुत की जाती हों ताकि उनके आधार पर स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं पर्यावरणीय स्थिति में सुधार लाने के लिये किसी कार्रवाई योजना को कार्यरूप दिया जा सके। प्रबंधन इससे संबंधित कानूनों तथा अधिनियमों का पालन करने के मामले में पूर्णतया उदासीन रहते हैं किन्तु इस पर श्रमिक संघों में अधिक चिंता उत्पन्न ही नहीं होती। ऐसे अनेक उद्धरण दिये जा सकते हैं जहां श्रमिक संघों ने प्रबंधन के साथ व्यक्तिगत सुरक्षा के लिये आवश्यक उपकरणों अथवा सुरक्षा प्रबंधों की अपेक्षा "सुरक्षा भत्ते" पर समझौते किये। सुरक्षा तथा स्वास्थ्य के लिये संघर्ष को कुद समय पहले तक फैशन गतिविधि अथवा उस स्थिति में जब कारखानों की विशाल संख्या पहले ही संकट ग्रस्त हो और अपने चलते रहने के लिए संघर्ष कर रही हो, इसे अव्यवहारिक माना जाता था। समग्र रूप में स्वास्थ्य तथा सुरक्षा के मुद्दे को अभी भी श्रमिक आंदोलन की कार्यसूची में लाया जाना शेष है।

18. जब भोपाल की गैस त्रासदी अथवा कोलियरी अग्निकांड तथा न्यू केंडा कोयला खदानों में विध्वंसक अग्निकांड, सूरत में प्लेग जैसी महामारी फूट पड़ी तो इसके विरुद्ध अनेकानेक वक्तव्यों ने समाचार पत्रों की शोभा बढ़ाई तो कुछ हलचल अवश्य हुई किन्तु उसके पश्चात् अगली दुर्घटना तक फिर वही सदियों पुरानी चुप्पी धारण कर ली गई।

19. स्थिति ने नया मोड़ उस समय ले लिया जब पर्यावरणीय आधार पर उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय के आदेशों के चलते सैकड़ों कारखानों के ऊपर कामबंदी की तलवार लटकने लगी। श्रमिक संघ अत्यंत कठिन तथा दु:खदायी स्थिति में फंस गए हैं। प्राय: अदालतों के कानूनी निर्णय के विरुद्ध आंदोलन चलाना तथा प्रदूषण फैलाने वाली इकाईयों को उसी रूप में चलते रहने की अनुमति देना अथवा उसके सदस्यों को चुपचाप एवं शांतिपूर्वक छंटनी स्वीकार कर लेने का परामर्श देना कठिन होता है।

20. प्रत्येक प्रकार के कारखाने की समस्या का कोई सर्व सामान्य समाधान नहीं निकल सकता है और न ही इस समस्या के साथ निपटना सहज है। प्रत्येक श्रमिक संघ को ये सभी दबाव ध्यान में रख कर समस्या के समाधान हेतु अपना पूरा ध्यान केंद्रित करना होगा और

प्रत्येक संभव समाधान निकालने के लिये तत्पर होना होगा।

21. तथाकथित भूमंडलीयकरण के नाम पर बहुराष्ट्रीय तथा विदेशी निगम हमारी छवि को धूमिल करने के लिये सुरक्षा तथा प्रदूषण जैसे मुद्दों का उपयोग उपकरणों के रूप में कर रहे हैं। वे हमारे उद्योगों को हस्तगत करने और हमारे उत्पादों से पिंड छुड़ाने जो उनके अपने उत्पादों की तुलना में सस्ते हैं, के लिये हर प्रकार की चालबाजी से काम ले रहे हैं।

22. पश्चिमी देशों द्वारा हाल ही में बाल मजदूरी के नाम पर भारतीय कालीन, अग्नि हृदय होने के तर्क पर भारत के सिले-सिलाए वस्त्रों का आयात करने से इनकार किये जाने, भारत कृषि उत्पादों की प्रतिबंधित करने क्योंकि उनके लिये रसायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशक दवाओं का उपयोग किया जाता है, जैसी घटनाएं सर्वविदित हैं। हम पर्यावरणीय मुद्दों का उपयोग संरक्षणवादी उद्देश्य के लिये किये जाने की संभावनाओं को रद्द नहीं कर सकते। हमें विकसित देशों के इस अपवित्र दबावों से अपनी अर्थव्यवस्था की रक्षा के लिये कड़ा संघर्ष करना होगा। किन्तु उसके साथ ही हम पर्यावरणीय समस्याओं की अनदेखी भी नहीं कर सकते।

हमारे कार्य

23. प्रौद्योगिकी, उत्पादन प्रक्रिया अथवा कारखाना स्थल को रातोरात अथवा कुछेक वर्षों में बदल देना संभव नहीं है। पहले ही संकटग्रस्त प्रमुख उद्योग अपने काम को पूर्णतया सुरक्षित बनाने के लिये अतिरिक्त धन लगाने तथा उसके साथ-साथ आर्थिक मंदी से बचने की सामर्थ्य नहीं रखते।

24. इस पर भी श्रमिक संघों को वर्तमान स्थिति में तीव्र गति से सुधार लाने के लिए श्रमिक वर्ग के मध्य जनमत जागृत करने के लिए भरसक प्रयास करने होंगे। जब हजारों करोड़ रुपये काले बाजार की शोभा बढ़ा रहे हो अथवा उन्हें विदेशी गुप्त खातों में जमा करा दिया जाता हो किन्तु दूसरी ओर संसाधनों की कमी के नाम पर हमारे श्रमिकों के जीवन तथा उनके अंगों की रक्षा के लिये धन का निवेश नहीं किया जाता तो उस स्थिति में हम मूकदर्शक बनकर बैठे नहीं रह सकते। भारत के औद्योगिक गृहों को व्यावसायिक वातावरण में सुधार लाने के लिये कुछ प्राथमिकताएं निश्चित करनी होगी और जलवायु को स्वच्छ बनाना होगा ताकि हमारा देश एक ऐसी धरती बन जाए जहां प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण सुरक्षा के साथ रह सकेगा।

25. श्रमिकगण ही इस समस्या को अच्छे ढंग से समझ सकते हैं। श्रमिक वर्ग का संघर्ष तथा पहलकदमी ही खराब विश्व व्यवस्था को बदल सकती है। हमें किसी न्यायिक अधिकारी की टिप्पणी अथवा आदेश की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। हमें यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि अनेक कारखाना मालिक अपनी सारी मशीनरी अथवा प्रौद्योगिकी को बदल नहीं सकते- किन्तु वे स्वच्छ पेय जल की आपूर्ति करने, निजी सुरक्षा के उपकरणों को उपलब्ध

कराने, कारखाने को समुचित ढंग से सुव्यवस्थित करने, गंदी हवा के निकास, रोशनदानों, शौचालय का बनवाने तथा हाथ इत्यादि धोने की समुचित व्यवस्था करने, पर्याप्त संख्या में विश्राम कक्ष बनवाने और कैन्टीन, साफ खाद्य पदार्थों की आपूर्ति, अत्यंत असुरक्षित कार्य को उन्मूलन तथा समुचित अभिचार के बिना विषाक्त निस्सारी तत्वों के विसर्जन के लिये वार्षिक बजट में उल्लेखनीय राशि रखने की स्थिति में तो है।

26. उद्यम स्तर पर श्रमिक संघों के कार्यकर्ताओं में सुरक्षा के प्रति जागरूकता लाना अत्याधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। उद्यम स्तर पर सक्रिय श्रमिक संघों को कार्य स्थल की सुरक्षा तथा पर्यावरणीय खतरे जैसे मुद्दे दैनंदिन ट्रेड यूनियन गतिविधियों की अपनी नियमित कार्यसूची में अवश्यमेव रखने चाहिये। उत्पादन प्रक्रिया पर पूर्ण संशय तथा कार्य संचालन के प्रत्येक चरण में संभावित खतरे ऐसे में स्थानीय स्तर के श्रमिक संघ की कार्यसमिति के नेतृत्व के लिये अत्यावश्यक हो जाता है कि वह कामकाजी स्थल में स्वास्थ्य तथा सुरक्षा की समस्याओं का अध्ययन करे और उनका समाधान ढूंढ़ निकालने का प्रयास करे। यूनियन को श्रमिकों के मध्य सुरक्षा के प्रति जागरूकता अभियान चलाना चाहिये। इससे सुरक्षा आंदोलन को विपथगामी होने अर्थात् केवल खतरा भत्ता मांग कर ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेने से रोका जा सकेगा। श्रमिक संघ में सुरक्षा पर एक उप समिति बनाने का सुझाव दिया जाता है यह उप समिति जागरूकता अभियान चलाएगी तथा श्रमिक संघ के नेतृत्व में स्वास्थ्य और सुरक्षा के मामलों में विशेषज्ञता लाएगी तथा उसे विकसित करेगी। ये कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिये।

27. स्वास्थ्य एवं सुरक्षा तथा पर्यावरण की समस्याएं और उद्योग दर उद्योग तथा क्षेत्र दर क्षेत्र उनकी भयावहता अत्यंत व्यापक है। प्रत्येक उद्योग की अपनी विशिष्ट समस्याएं हैं और उनके विशेष निदान (अथवा समाधान) भी हैं। अत: इस प्रकार के मुद्दों को विशिष्ट उद्योग अथवा विशिष्ट क्षेत्र के अनुसार सुलझाया जाना चाहिये और उसके अनुरूप श्रमिक संघों को उसमें प्रभावी हस्तक्षेप करना होगा। इसलिये श्रमिक संघों को उद्यम/उद्योग स्तर पर कार्य संचालन के विभिन्न चरणों में व्याप्त खतरों का पता लगाने और उनके लिये आवश्यक निदानात्मक उपायों का सुझाव देने के लिये एक जांच दल का गठन करने के मामले में पहलकदमी करनी चाहिये। इन उपायों में वर्तमान असुरक्षित विधियों/प्रक्रियाओं यदि कोई हैं तो, के लिये उपयुक्त विकल्पों का सुझाव देना भी सम्मिलित है।

28. स्वास्थ्य तथा सुरक्षा के मामलों पर आवश्यक साहित्य तथा तथ्यात्मक रिपोर्ट सामान्य जन साधारण अथवा संभ्रात जन के पास विद्यमान हैं। श्रमिक संघों को पहलकदमी करके शिक्षा तथा जागरुकता अभियान के लिये सरल भाषा में साहित्य उपलब्ध कराना चाहिये। कोयला तथा अयस्क खदानों, रसायनों, इस्पात, निर्माण, गोदी एवं बंदरगाह, विद्युत, सड़क परिवहन, बागवानी और उसके साथ-साथ लघु एवं असंगठित क्षेत्रों जैसे खतरनाक प्रदूषण

प्रवण उद्योगों में उद्यम/उद्योग स्तरीय कर्मशालाओं में इस प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिये। इन कार्यक्रमों में संयंत्र स्तरीय श्रमिकों तथा कार्यकर्ताओं तथा विशेषज्ञों को सम्मिलित किया जाना चाहिये ताकि निचले स्तर पर प्राप्त अनुभवों से लाभ उठाया जा सके और उस अनुभव जन्य ज्ञान का लाभ उठा कर उद्योग विशेष के लिये विशिष्ट साहित्य उपलब्ध कराया जा सके जो तकनीकी एवं सैद्धांतिक विशेषज्ञता से ओतपोत हो।

39. केंद्रीय स्तर पर ट्रेड यूनियन केंद्र को स्वास्थ्य तथा सुरक्षा के पक्षों पर पूर्ण गम्भीरता के साथ और समयबद्ध कार्यक्रम के अनुसार उद्योग/उद्यम स्तर पर की गई पहलकदमियों का निरीक्षण करने के लिये पहल करनी चाहिये। स्वास्थ्य तथा सुरक्षा के मामलों पर विषय वस्तु तथा उसे लागू करने की दृष्टि से उसके वर्तमान प्रशासन तथा नियमों की कमियों एवं सीमाओं का पता लगाना भी महत्वपूर्ण तथा अत्यावश्यक है। उन क्षेत्रों का भी पता लगाया जाना चाहिये जहां नये कानूनों को लागू करना आवश्यक हो जाता है और इसके लिये कार्रवाई की ठोस योजना बनाना भी अनिवार्य हो जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उद्योग स्तरीय अनुभवों तथा जांच-रिपोर्ट से लाभ उठाया जा सकता है। इसलिये केंद्र द्वारा निचले स्तर पर कार्यकर्ताओं को स्वास्थ्य तथा सुरक्षा के पक्षों पर सक्रिय करना अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। राज्य तथा राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर ट्रेड यूनियन केन्द्रों के लिये पहलकदमी करना इसलिये भी आवश्यक हो जाता है ताकि स्वास्थ्य तथा सुरक्षा पर त्रिपक्षीय मंच की सुदृढ़ता को सुनिश्चित बनाया जा सके और श्रमिक संघों की उसमें प्रधान भूमिका हो।

30. श्रमिक आंदोलन को राष्ट्रीय स्तर पर भी पूर्ण गंभीरता के साथ सुरक्षा एवं पर्यावरणीय खतरों के विभिन्न पक्षों को उठाना होगा। प्रदूषण फैलाने वाली औद्योगिक इकाईयों के मामले में न्यायपालिका के हस्तक्षेप ने पहले ही श्रमिक आंदोलन की कार्यसूची में पर्यावरण से संबंधित मामलों को जोड़ दिया है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि औद्योगिक कार्यों के माध्यम से प्रदूषण फैलाने जैसी समस्याओं की ओर अब तक श्रमिक आंदोलन ने ध्यान नहीं दिया। प्रदूषण के चलते हाल ही में कार्यबंदी की बढ़ती घटनाओं के लिये यह भी एक उत्तरदायी कारक है। इसके कारण ही न्यायपालिका को हस्तक्षेप करना पड़ा।

31. वर्तमान स्थितियों में जहां श्रमिक संघों को संयुक्त रूप से नियोजकों को दबाव डालना, होगा कि वे (नियोजक) मशीनरी में समुचित सुधार लाकर, उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन लाकर तथा विसर्जन से पूर्व कचरे का अभिचार करके प्रदूषण को फैलाने से रोकने के लिये आवश्यक कदम उठाएं। उन्हें समुचित आंतरिक संरचना को विकसित करने, उसे उपलब्ध कराने तथा प्रदूषण नियंत्रण के लिये आवश्यक धन का व्यय करने के लिये सरकार पर दबाव डालना चाहिये। श्रमिक आंदोलन को केंद्रीय तथा राज्य सरकारों पर दबाव डाल कर उन्हें प्रदूषण नियंत्रण हेतु अल्पावधि तथा दीर्घावधि की योजनाएं बनाने पर विवश करना चाहिये। इन योजनाओं में औद्योगिक गृहों तथा कार्पोरेट क्षेत्र को भी सम्मिलित किया जाना चाहिये।

सरकार औद्योगिक केंद्रों में प्रदूषण नियंत्रण तथा कचरा एवं निस्सारी तत्वों के अभिचार संयंत्रों की कुछ समुचित परियोजनाएं हाथ में ले सकती हैं। इन परियोजनाओं के लिये प्रदूषण फैलाने वाली औद्योगिक इकाईयों से संसाधन जुटाएं जाएं और सरकार भी इससे अनुपूरक निवेश कर सकती है ताकि प्रदूषण नियंत्रण तथा पर्यावरण संरक्षण के लिये सीमित संसाधनों के उपयोग को सुनिश्चित बनाया जा सके।

32. इसके साथ ही उन औद्योगिक इकाईयों के श्रमिकों के हितों तथा रोजगार की रक्षा के लिये समुचित विधायी उपाय करने पर सरकार को विवश किया जाए जिन्हें प्रदूषण के कारण कामबंदी तथा अन्यत्र स्थानांतरण जैसी स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। दिल्ली स्थिति औद्योगिक इकाईयों के संबंध में उच्चतम न्यायालय के निर्णय ने एक दिशा निर्धारित कर दी है किन्तु इस संबंध में अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है।

33. यही नहीं एक ओर कोयला खदानों तथा गैर कोयला खदानों, पत्थर खदानों तथा रसायनिक संयंत्रों जैसे प्रमुख प्रदूषण प्रवण (प्रोन) तथा दुर्घटना प्रवण औद्योगिक क्षेत्रों वहीं दूसरी ओर असंगठित क्षेत्र में विभिन्न लघु निर्माता तथा प्रसंस्करण (प्रोसैनिंग) इकाइयों के संबंध में यह जानने के लिये कि वहां सुरक्षा नियमों का पालन हो रहा है या नहीं, एक निगरान तंत्र बनाया जाना चाहिये। निगरानी के लिये समुचित तंत्र उपलब्ध कराया जाए तथा अपराधी पाए जाने वाले नियोजकों-प्रबंधकों के विरुद्ध कठोर दण्डात्मक कार्रवाई की जाए। इसके लिये व्यापक कानून बनाया जाना चाहिये और अंतिम रूप से श्रमिक आंदोलन पूर्ण गंभीरता के साथ इस कानून को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिये अपनी जोरदार आवाज उठाए।